ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१७ Date of Printing = 05-10-17
प्रकाशन दिनांक= 05-10-17

वर्ष ४६ : अङ्क १२
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : आश्विन-कार्तिक, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९९५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु० वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- वेदोपदेश ३
- धर्म और धर्मगुरू ४
- तैत्तिरीयोपनिषद् की कथा ६
- ओहो! वह समर्पण भाव - 4 ९
- सत्य का मार्ग ही.... १३
- भारतवर्ष के उत्थान में.... १५
- स्वामी जी का मूर्तिपूजा पर प्रहार १९
- क्या महर्षि दयानन्द का अलभ्य..... २१
- रामराज्य की सुखद कल्पना २७

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

मनुस्मृति का नवीन संस्करण

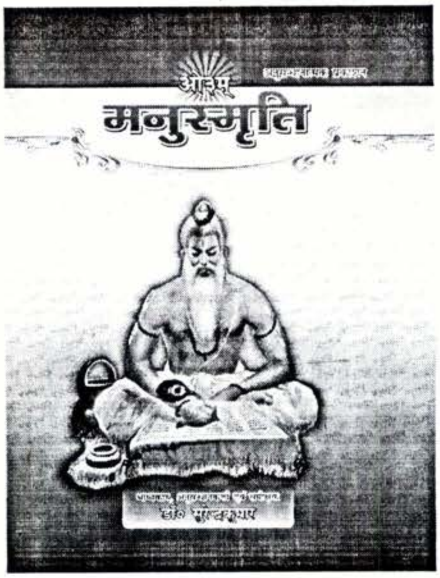

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट अपने सभी सुधी पाठकों को यह सूचित करते हुए हर्ष एवं गौरव का अनुभव करता है कि बहुप्रतीक्षित मनुस्मृति का नवीन एवं कम्प्यूटरीकृत संस्करण अब पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार कृत मनुस्मृति ट्रस्ट का एक गौरवपूर्ण प्रकाशन है। ट्रस्ट ने मनुस्मृति के प्रक्षेपों के अनुसन्धान का जो प्रामाणिक कार्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है, ऐसा आज तक किसी ने नहीं किया था। यह नवीन संस्करण और भी विशेषताएं लिए हुए है। इसमें मनुस्मृति के मूल्यांकन से सम्बन्धित तथा श्लोक सम्बन्धी समीक्षा से सम्बन्धित पर्याप्त नयी सामग्री प्रदान की जा रही है। भाष्यकार ने मनु और मनुस्मृति से सम्बन्धित विवादों और प्रश्नों पर प्रक्षेपरहित नवीन दृष्टिकोण से सप्रमाण और युक्तियुक्त विवेचन किया है। वेदों तथा अन्य शास्त्रग्रन्थों के प्रमाणों से मनु के भावों को उद्घाटित एवं पुष्ट किया है।

सुधी पाठकों से निवेदन है कि इसे स्वीकार कर एवं इसकी अधिकाधिक प्रतियां मंगाकर भारतीय संस्कृति-सभ्यता के मूलाधार, प्राचीनतम, अनमोल शास्त्र के प्रचार प्रसार में सहयोग प्रदान करें, जिससे प्राचीन साहित्य का वास्तविक रूप सबके सामने प्रचारित हो सके और महर्षि मनु तथा मनुस्मृति-विषयक प्रचलित भ्रान्तियां दूर हो सकें।

प्रमुख आकर्षण -

※ बड़ा साईज 20X30/8

※ कम्प्यूटरीकृत मुद्रण

※ सफेद कागज एवं सुन्दर छपाई

※ पृष्ठ 1004

※ सुनहरी प्रिटिंग सहित हार्ड बाईडिंग (मजबूत टिकाऊ जिल्द)

※ चार रंगों से सुसज्जित कवर।

पुस्तक पर मूल्य 600 रुपये अंकित है। प्रचारार्थ केवल 500 रुपये में उपलब्ध है। 1 प्रति से अधिक लेने पर अतिरिक्त कमीशन। पुस्तक विक्रेताओं के लिए स्पेशल छूट भी उपलब्ध है।

दिनेश शास्त्री, कार्यालय व्यवस्थापक

चलभाष : 96522778

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। – महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश– १. अग्नि (इश्वर) - सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, ज्ञानस्वरूप, सबसे महान, सुखवर्धक अग्निहोत्र आदि का उपदेश करने वालाा है।

२. अग्नि (भौतिक) अग्निहोत्र नामक यज्ञ को प्राप्त कराने वाला, प्रकाश गुण वाला, महान कार्यों का साधक, चलते समय मार्ग का दर्शक है।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। अग्निः = ईश्वरः भौतिकश्वा देवता।

निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।।

अथाग्निशब्देनोभावार्थावुपदिश्येते।।

अब अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक अग्नि अर्थों का उपदेश किया जाता है।।

ओ३म् –वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे।। यजु० 2।4।।

पदार्थः–(वीतिहोत्रम्) वीतयो विज्ञापिता होत्राख्या यज्ञ येनेश्वरेण। यद्वा वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मात्तं परमेश्वरं भौतिकं वा। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। इत्यस्य रूपम् **(त्वा)** त्वां तं वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः **(कवे)** सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ, कविं क्रान्तिदर्शनं भौतिकं वा **(द्युमन्तम्)** द्यौर्वहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तम्। अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्। **(सम)** सम्यगर्थे **(इधीमहि)** प्रकाशयेमहि। अत्र वहुलं छन्दसीति श्नमो लुक् **(अग्ने)** ज्ञानस्वरूपेश्वर प्राप्तिहेतुं भौतिकं वा **(बृहन्तम्)** सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं वा **(अध्वरे)** मित्रभावेऽहिंसनीये यज्ञे वा।। अयं मन्त्रः श० ब्रा० १/३/४/६//

सपदार्थान्वयः– हे कवे! सर्वज्ञ क्रान्तप्रज्ञ! अग्ने! (जगदीश्वर) ज्ञानस्वरूपेश्वर! (वयमध्वरे) मित्रभावे (बृहन्तं) सर्वेभ्यो महान्तं सुखवर्धकमीश्वरं (द्युमन्तं) द्यौर्वहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (वीतिहोत्रं) वीतयो विज्ञापिता होत्राऽऽख्या यज्ञा येनेश्वरेण तं परमेश्वरं (त्वा)= (त्वां समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि। इत्येकः।।

(वयमध्वरे) अहिंसनीये यज्ञो (वीतिहोत्रं) वीतयः प्राप्तिहेतवो होत्राख्या यज्ञक्रिया भवन्ति यस्मान्तं भोतिकं (द्युमन्तं) द्यौर्वहुप्रकाशो विद्यते यस्मिँस्तं (वृहन्तं) बृहतां कार्य्याणां साधकं भौतिकं (कवे) (कविं) क्रान्तदर्शनं भौतिकं (त्वा) (तम्) (अग्ने) (भौतिकमग्निं) प्राप्तिहेतुं भौतिकं (समिधीमहि) सम्यक् प्रकाशयेमहि।। इति द्वितीयः।।

भाषार्थ :– हे (कवे!) सर्वज्ञ त्रिकालज्ञ! (अग्ने!) ज्ञानस्वरूप-परमेश्वर! हम (अध्वरे) मित्रता से रहने के लिए (बृहन्तम्) सवसे महान् तथा सुखों के बढ़ाने वाले (द्युमन्तम्) अत्यन्त प्रकाश वाले (वीतिहोत्रम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञों के वतलाने वाले (त्वा) आप परमेश्वर क्रो (समिधीमहि) हृदय में प्रदीप्त करें।। यह इस मन्त्र का प्रथम अर्थ है।

हम लोग (अध्वरे) हिंसा से रहित यज्ञ में (वीतिहोत्रम्) सुख प्राप्ति की हेतु अग्निहोत्र आदि यज्ञ क्रियाएँ जिससे सिद्ध होती हैं, उस भौतिक अग्नि को (द्युमन्तम्) वहुत कार्यों के साधक (कवे) क्रान्तदर्शी कवि रूप भौतिक (त्वा) उस (अग्ने) प्राप्ति के हेतु अग्नि को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करें।। यह इस मन्त्र का द्वितीय अर्थ हुआ।

(हे.... अग्ने = जगदीश्वर! वयं (त्वा)= त्वां समिधीमहि)

भावार्थः– अत्र श्लेषालङ्कारः। यावन्ति क्रियासाधनानि क्रियया साध्यानि च वस्तूनि सन्ति, तानि सर्वाणीश्वरेणैव रचयित्वा ध्रियन्ते। मनुष्यैस्तेषां सकाशाद् गुणज्ञान क्रियाभ्यां वहव उपकाराः संग्राह्याः।।

भावार्थ :– इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। जितने भी क्रिया के साधन तथा क्रिया से साध्य पदार्थ हैं, उन सवको ईश्वर ने ही रच कर धारण किया है। मनुष्य उनसे गुणगान और क्रिया के द्वारा वहुत से उपकारों को ग्रहण करें।

धर्म और धर्मगुरु

(धर्मपाल आर्य)

धर्म शान्ति का, मुक्ति का सशक्त साधन है,धर्म मानवता का सूत्र है और धर्म एक ऐसा विज्ञान है,जो आत्मा और परमात्मा को जानने/समझने में मानव की सहायता करता है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा धर्म के मर्म को जानने के लिए ऋषियों का , मुनियों का और आचार्यों का सहारा लेते थे तथा ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार अपने जीवन को,अपने परिवार को और अपने समाज व राष्ट्र को चलाने का प्रयास करते थे। प्राचीन काल में धर्म जीवन का आवश्यक अंग था, धर्मगुरुओं का आचरण, उनका चरित्र , उनकी साधना, उनका आत्मवल, उनका तपोवल और उनका मनोवल तथा उनकी समग्र पावनता ही समाज के लिए अपने आप में एक धर्मोपदेश होती थी। क्या राजा,क्या प्रजा, क्या ब्रह्मचारी,क्या गृहस्थी, क्या धनी, क्या निर्धन,क्या वली, क्या निर्वल,क्या स्त्री, क्या पुरुप, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या छोटा, क्या बड़ा सबके सव धर्माचार्यों और सद्गुरुओं के सदुपदेशों से अपने जीवन को धन्य बनाते थे। धर्म धन का, लोकेषणा अथवा पुत्रेपणा का साधन नहीं था, अपितु आत्मिक शान्ति का, ईश्वर की उपासना का एक सुलझा हुआ पथ था, जिस पर चलकर व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र सात्विक भावनाओं का निर्माण करते थे। धर्म और धर्माचार्यों व धर्मगुरुओं का पहले भी महत्व था, आज भी है और आगे भी रहेगा। फिर धर्म और धर्मगुरु विवादों के चक्रव्यूह में आखिर क्यों फंस रहे हैं? आज क्यों एक के बाद एक कथित धर्मगुरु के काले कारनामों का खुलासा हो रहा है?क्या इस प्रकार के यक्ष प्रश्नों से यह कह कर पीछा छुड़ाया जा सकता है कि यह एक वर्गविशेप का दूसरे वर्ग के खिलाफ सोची समझी साजिश रची जा रही है? क्या मौलवियों, मुल्लाओं, पादरियों और धर्मोपदेशकों के निन्दित कृत्यों पर यह कहकर पर्दा डाला जा सकता है कि धर्मनिरपेक्षता पर हमला है? अव समय आ गया है कि हमें उपर्युक्त प्रश्नों का सत्यतापूर्वक सामना करते हुए उचित समाधान करना चाहिए। मुझे बड़ी हैरानी के साथ लिखना पड़ रहा है कि अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद ने राधे मां,निर्मल बाबा,आसाराम,उसके पुत्र नारायण सांई, ओम स्वामी, भीमानन्द, रामपाल दास तथा गुरुमीत रामरहीम सहित चौदह तथाकथित सन्तों का सामाजिक वहिष्कार करते हुए इन्हें ढोंगी, पाखंडी घोपित किया है। हैरानी इस वात की नहीं कि इन्हें ढोंगी व पाखंडी क्यों घोपित किया गया? अपितु हैरानी इस वात की है कि राधे मां से लेकर गुरुमीत रामरहीम तक के इन कथित धर्म के झण्डावरदारों की काली करतूतों पर चुप्पी क्यों साध रखी थी अखाड़ा परिपद ने? ये धर्मगुरु थे असंख्य काले कारनामों के पारस्परिक प्रतिस्पर्धी, फिर इनको समझने में अखिल भारतीय अखाड़ा परिपद ने आखिर इतना विलम्व क्यों किया? उपर्युक्त तथाकथित सन्तों के कुत्सित कृत्यों के खिलाफ आर्यसमाज हमेशा अपनी आवाज बुलन्द करता रहा है और करता रहेगा। समाज इस प्रकार के सन्त नामध ारी पाखण्डियों की कारस्तानी के प्रति जागरूक करता रहा है। जिन तथाकथित सन्तों के कदाचार को समझने में अखाड़ा परिपद ने इतना विलम्व किया; आर्यसमाज शुरू से ही इनकी वास्तविकता से परिचित था, जिसका हमने अपनी सामर्थ्यानुसार विरोध किया। धर्म के तत्व को न जानने के कारण ही आज हमारा समाज धर्म के नाम पर गढ़ी गई अनुचित रीति-रिवाजों की दल-दल में फंसता जा रहा है। आर्यसमाज हमेशा ऐसे पाखण्डों और पाखण्डियों का पर्दाफाश करता रहा है और समाज को अपने ढंग से जागरूक करने का काम करता रहा है। जिसकी मिसाल ढोंगी रामपाल दास के साथ आर्यसमाज की बलिदानी जंग के रूप में पूरी दुनियां ने देखी। आज जव राम रहीम की कारगुजारियां छन-छन कर वाहर आ रही हैं, तो लोगों की जुवां पर एक ही सवाल है कि जो समाज को सुधारने का, धर्म के मार्ग पर चलाने का, नवयुग के निर्माण का दावा करते हैं उनके जीवन की वास्तविकता सत्य के, धर्म के, आध्यात्मिकता के, मानवता के, भक्ति के और सद्भावना के एकदम

विपरीत क्यों हैं? यदि राधे मां आध्यात्मिक हो सकती है, यदि ओम स्वामी आध्यात्मिक हो सकता है, यदि नारायण सांई और आशाराम आध्यात्मिक हो सकते हैं, यदि सन्त रामपाल दास हो सकता है और यदि गुरुमीत राम रहीम आध्यात्मिक उपदेष्टा हो सकता है, तो मुझे अपने प्रवुद्ध पाठकों को यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं कि जीवन में यदि सवसे सरल और सहज कोई कार्य है तो वह है आध्यात्मिक होना। क्योंकि उपरोक्त तथाकथित सन्तों के अनुसार तो सन्त वनने के लिए आध्यात्मिक वनने के लिए न तो संयम की आवश्यकता है न ही साधना की आवश्यकता है, न ही सच्ची भक्ति की आवश्यकता है, न ही तप-त्याग की आवश्यकता है और न ही स्वाध्याय की आवश्यकता है, बस थोड़ा सा आध्यात्मिकता का, थोड़ा सा संयम का, थोड़ा भक्ति का, थोड़ा तप-त्याग का और थोड़ा सा स्वाध्याय का लवादा ओढ़ लो और वस वन गए आध्यात्मिक सन्त। आशाराम का कारोबार दस हजार करोड़ का, आध्यात्मिक गुरुमीत राम रहीम का कारोबार तीन हजार करोड़ रुपये का। 12 अगस्त को गुरुमीत राम रहीम पंचकूला की सीवीआई अदालत ने साध्वी यौन शोषण का दोपी करार दिया और 28 अगस्त को इसे 20 वर्प की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। राम रहीम को सजा सुनाने के वाद उसके भक्तों ने हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और दिल्ली में हिंसा का जैसा घिनौना खेल खेला, उससे राजधर्म की चूलें हिलने के साथ-साथ भक्ति और आध्यात्मिकता भी शर्मसार हुई। राम रहीम की गिरफ्तारी पर चीन और पाकिस्तान भी अपनी राजनीतिक प्रतिक्रिया देने से नहीं चूका। पाकिस्तान ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा कि 'धर्मगुरू राम रहीम को एक साजिश के तहत फंसाया जा रहा है। चीनी प्रतिक्रिया कूटनीतिक थी, जिसके तहत चीन ने कहा "भारत पहले अपने आन्तरिक मामले सुलझाए। इस प्रतिक्रिया से एक वात तो बहुत स्पप्ट है कि चीन हमारे देश के आन्तरिक मामलों पर कितनी पैनी नजर रख रहा है। इस प्रकार के धर्मगुरू देश की एकता के लिए खतरा हैं। राम रहीम के मामले में सीवीआई अदालत के न्यायाधीश जगदीप सिंह लोहान ने जो तल्ख टिप्पणी की, वो हम सबको और हमारी सामाजिक व्यवस्था को झकझोर देने के लिए काफी है। न्यायाधीश महोदय ने टिप्पणी करते हुए कहा कि 'धर्म की आड़ में महिलाओं की अस्मत से खेलने वाला किसी सूरत में क्षमा का पात्र नहीं है। यदि समाचार पत्रो की वातों पर और टी.वी. चैनलों पर दिखाए जा रहे राम रहीम के कारनामों पर विश्वास किया जाए, तो यौन शोपण की शिकार महिला एक नहीं अपितु अनेकों हैं तथा मरने वालों में केवल पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति व रणजीत ही नहीं अपितु उनकी संख्या भी अनेकों में है। क्योंकि डेरे में नरकंकालों के होने की आशंका व्यक्त की जा रही है। धर्म की आड़ लेकर यौन शोपण, धर्म की आड़ लेकर धमकियां, धर्म की आड लेकर हत्याएं, धर्म की आड़ लेकर अय्याशी और धर्म की आड़ लेकर भोग-विलासिता ये धर्म का आध्यात्मिकता का क्रूरतम उपहास है। राम रहीम भक्तों की नजर में आध्यात्मिक था लेकिन हमारी नजर में वो आध्यात्मिक नहीं अपितु रंगीला फिल्मी अभिनेता था। इस तथाकथित आध्यात्मिक गुरू का अपने भक्तों पर प्रभाव इस कदर था कि क्या महिलाएं, क्या पुरुप, क्या युवा, क्या वृद्ध, क्या पढ़े लिखे, क्या अनपढ़ सवके सव इसको पिताजी कहकर सम्वोधित करते थे। लकिन इन अन्धभक्तों के इस रंगीले- पिताजी पर आप जानते हैं, किसका प्रभाव था? इस पर प्रभाव था घरौंडा के एक डेरानुयायी एम.पी. गुप्ता के वेटे विश्वास गुप्ता की पूर्व पत्नी प्रियंका तनेजा उर्फ हनीप्रीत इन्सा का जो कि आज तक कई प्रदेशों की पुलिस व जांच एजेन्सियों के एक अनसुलझी पहेली बनी हुई है। मैं यहाँ अपने प्रवुद्ध पाठकों को यह भी वताना चाहूँगा कि राम रहीम के इस कुकृत्य का भण्डाफोड़ आखिर कसे हुआ? आज से लगभग 15 वर्ष से किसी साध्वी की गुमनाम चिट्ठी पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के नाम प्रधानमन्त्री कार्यालय को प्राप्त हुई, जिसकी परिणति 28 अगस्त 2017 को डेरे प्रमुख राम रहीम को बीस वर्प की कठोर कारावास के रूप में हुई। उस चिट्ठी की केवल एक वात अपने पाठकों के समक्ष रखना चाहता हूँ, जिसका उल्लेख साध्वी ने किया है। साध्वी लिखती हैं कि एक वावा ने मुझे अपनी गुफा में बुलाया तो वहां उसने मुझसे अश्लील हरकतें करनी शुरू की तो मैंने इसका विरोध किया। इस पर राम रहीम ने कहा कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम

शेप पृष्ठ २६ पर

तैत्तिरीयोपनिषद् की कथा

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- 09845058310)

मुण्डकोपनिषद् के उपरान्त माण्डूक्योपनिषद् पढ़ा गया है, परन्तु इसमें केवल ओम् की व्याख्या है और कोई कथा नहीं है। अगला उपनिषद् तैत्तिरीय है। यह दीर्घ ग्रन्थ है। तथापि इसमें केवल एक कथा प्राप्त होती है। उसका विवरण मैं इस लेख में प्रस्तुत कर रही हूँ। सम्भवतः यह कथा भी किसी ऐतिहासिक घटना को कहती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत प्राप्त तैत्तिरीय आरण्यक का सातवां, आठवां और नवां अध्याय है। उपनिषद् में इन अध्यायों के नाम शीक्षा-वल्ली, ब्रह्मानन्द-वल्ली और भृगु-वल्ली हैं। उस अन्तिम भृगु-वल्ली में भृगु की कथा प्राप्त होती है। वल्लियां अनुवाकों में बंटी है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्यात्मक है। यह दोनों के लिए शिक्षाएं पाई जाती हैं। इसमें अनेकों प्रसिद्ध वाक्य भी पाए जाते हैं, जैसे कि **"मातृदेवो भव" "अतिथिदेवो भव"**, आदि जिनसे प्रायः सभी परिचित हैं। कई सीखें सरल हैं और कुछ जटिल- जिनके अर्थ काल के कपाल में लीन हो गए हैं। तथापि इसके समझ में आने वाले उपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मैं उनका भी थोड़ा-सा दिग्दर्शन कराऊंगी, परन्तु पहले कथा...

पुरातन काल में भृगु नामक एक ऋषि हुए थे, जिन्होंने ब्रह्मविद्या को प्राप्त किया था। यह उनकी खोज की कहानी है। उनके पिता वरुण थे, जो पूर्ण ज्ञानी थे। एक बार भृगु पिता के पास गया और उनसे बोला, "पिताजी, मुझे ब्रह्मोपदेश करिए।" पिता जैसे पहेलियों में बोले, "अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी (इन के द्वारा ही यह विद्या प्राप्त होगी)।" आगे वे बोले, "जिससे यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर जीते हैं, जिससे ये (इस लोक से) प्रयाण करते हैं और जिसमें (मरणोपरान्त) प्रवेश करते हैं, उसको जानने की इच्छा (=प्रयत्न) कर क्योंकि वही ब्रह्म है।"

भृगु ने तप आरम्भ किया। उस तप से उसने जाना कि अन्न ही वह वस्तु है, जिससे प्राणी उत्पन्न होते हैं, जीते हैं, जिसके बिना वे मृत्यु को प्राप्त करते हैं और, मरणोपरान्त, अन्न में ही समाविष्ट हो जाते हैं। उन्होंने पिता को अपनी खोज का परिणाम बताया। पिता ने कहा कि ठीक है, परन्तु यह अन्तिम उत्तर नहीं है। उन्होंने भृगु को और तप करने को कहा।

भृगु ने पुनः घोर तपस्या की और जाना कि पिता ने जो पहला विचित्र वाक्य कहा था, उसी में पुनः उत्तर छुपा हुआ है, क्योंकि प्राण ही तो वह वस्तु है, जिससे यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिससे उत्पन्न होकर जीते हैं, जिससे निकल जाने पर इस लोक से प्रयाण कर देते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। परन्तु पिता फिर भी सन्तुष्ट नहीं हुए और उससे और तप करने को कहा।

अब की बार भृगु को ब्रह्म के रूप में मन ज्ञात हुआ, जिससे भी सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिसकी सहायता से जीते हैं, जिसके न रहने पर मरते हैं, और अन्तकाल में उसी में विलीन हो जाते हैं। परन्तु इस उत्तर से भी पिता सन्तुष्ट नहीं हुए। तब भृगु को ब्रह्म के रूप में विज्ञान जान पड़ा, जिससे भी सब उपर्युक्त कार्य होते हैं। जब पिता ने और आगे ढूंढने की प्रेरणा दी, तो भृगु को आनन्द-रूपी ब्रह्म जान पड़ा। अब की बार वरुण सन्तुष्ट हुए। इन दोनों के तप से जानी गई यह विद्या भार्गवी-वारुणी विद्या कहलाई।

भृगु की खोज के विभिन्न चरणों को देखकर, सम्भवतः आप अब तक जान गए हों कि वह वास्तव में क्या ढूंढ रहा था और क्या पा रहा था। वस्तुतः भृगु

ने ध्यान-रूपी तप से शरीर के पंच कोशों का रहस्य ढूंढ निकाला। ये पंच कोश हैं- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश। ये जैसे शरीर की स्थूल से सूक्ष्मतर परते हैं, जो एक के अन्दर एक बैठी हैं।

अन्नमय कोश स्थूल शरीर है, जो कि पंच महाभूतों का वना हुआ है। इसी को हम अधिकतर अनुभव करते हैं- भूख-प्यास, चोट, बल, आदि स्थूल शरीर के लक्षण होते हैं।

प्राणमय कोश में श्वास-निःश्वास ही नहीं, अपितु शरीर की सभी चेष्टाएं सम्मिलित हैं। प्राणों से ही रक्त को गति मिलती है और आंतों से शरीर में रस बहता है। ध्यान करते समय, पहले भौतिक शरीर के किसी अंश के बाद, हमें अपने प्राणों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। बृहदारण्यक में कहा गया है कि सभी इन्द्रियां, और मन भी, पाप-युक्त हो सकती हैं, परन्तु प्राण पाप से परे रहता है। प्राणों पर ध्यान लगाने से, हमारा मस्तिष्क पवित्र हो जाता है।

और अन्दर जाने पर, योगी को मन का रूप स्पष्ट होता है- वह मन जो इन्द्रियों से बाह्य विषयों का ग्रहण करता है और फिर शरीर में चेष्टा उत्पन्न करने का संकल्प-विकल्प करता है।

मनोमय कोश से भी सूक्ष्मतर होता है विज्ञानमय कोश, जो कि बुद्धि का पर्याय है। यहां हमारे गहन विचार स्थित होते हैं। जव हम किसी विचार में लीन होते हैं, तो अपने शरीर की सुध-बुध भूल जाते हैं, हमारा शरीर शिथिल पड़ जाता है।, हमें अपने आस-पास की सुध भी नहीं रहती, हम किसी और ही संसार में होते हैं। वह विज्ञानमय कोश होता है। योगी भी इसमें प्रवेश करके शरीर और इन्द्रियों को भूल जाता है।

इस कोश के अन्दर स्थित होता है आनन्दमय कोश। यह वह कोश है, जहां आत्मा अपने को देखने लगता है, परमात्मा की झलक पाने लगता है। जैसे-जैसे वह इसमें प्रवेश करता जाता है, वैसे-वैसे प्रकृति का अंकुश उसपर से उठता जाता है, और वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होने लगता है। इस अवस्था में जिस आनन्द की अनुभूति उसे होती है, वह वर्णनातीत है, क्योंकि वर्णन में तो शारीरिक और मानसिक सुख-दुःख ही आते हैं। योगदर्शन में इसी स्थिति को आनन्दा समाधि कहा गया है, जिसके आगे अस्मिता समाधि में वह अपने में स्थित हो जाता है। यहीं पहुंच कर ब्रह्मलोक के द्वार खुलने लगते हैं और मोक्ष-मार्ग प्रशस्त होता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में और भी सुन्दर शिक्षाएं हैं, जैसे शीक्षा-वल्ली के एकादश अनुवाक में आचार्य गुरुकुल में स्नातक हो, उसे छोड़ते हुए अन्तेवासी को अन्तिम शिक्षा देते हैं कि सांसारिक जीवन-निर्वाह कैसे करना चाहिए-

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवछेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।

अर्थात् वेदों को भली-भांति पढ़ाकर, आचार्य अन्तेवासी को शिक्षा देते हैं- सत्य बोलना। धर्म करना। (गृहस्थ-जीवन प्रारम्भ करने पर भी) स्वाध्याय बिना प्रमाद के करते रहना। (जाते-जाते) आचार्य के प्रिय धन से उसको तृप्त करके, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करके प्रजा के धागे को मत तोड़ना, अर्थात् सन्तति उत्पन्न करके कुल को बढ़ाना (उस समय यह भय होता था कि स्नातक इतना निर्मोही कहीं न हो जाए, कि विवाह ही न करे। आजकल तो यह भय ही हास्यास्पद है!)। सत्य से कभी मत डिगना। धर्म से कभी मत डिगना। शुभ, कल्याणकारी कर्मों में आलस्य कभी मत करना। भौतिक उन्नति के प्रयास से मत विरत होना। स्वाध्याय और प्रवचन- अपनी और अन्यों की धर्म में शिक्षा- से कभी विरत मत होना। देव = ज्ञानियों और पितृ =

परिवार के वृद्धों की सेवा में कभी चूक मत करना।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।

अर्थात् माता तेरे लिए देव-तुल्य हों। एवमेव पिता, आचार्य और घर आए साधु-सन्त रूपी अतिथि को देव मान। (उनके सत्कार और सेवा में कमी न होने पाए।) जो हमारे प्रशंसित कर्म हैं, उनका अनुसरण कर, हमारे अन्य (दुष्कर्मों) का नहीं। जो हमारे गुण हैं, उनको प्राप्त कर, अन्यों (दुर्गुणों) को नहीं। हममें जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उनकी आसन आदि से सेवा-सत्कार कर। दान करते समय ध्यान रखना कि- श्रद्धा (पूर्ण मनोभाव) से देना। अश्रद्धा से मत देना (यहां 'अश्रद्धया देयम्' पाठ भी उपलब्ध होता है, जिसका अर्थ किया जाता है कि सुपात्र को, श्रद्धा-भाव न होने पर भी, देना)। अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार दान करना। अहंकार-शून्य होकर देना। परमात्मा के भय से देना। सुपात्र जानकर, विवेकपूर्ण देना।)

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम् एवमु चैतदुपास्यम्।

अर्थात् तुझे किसी कर्म में कोई शंका हो, या किसी आचार के विषय में शंका हो, तो तेरे आसपास जो विचारशील, स्वयं उस कार्य में लगे हुए, अथवा नियुक्त किए हुए, स्नेहमय, धर्म की कामना करने वाले ब्राह्मण हैं, वे उस आचरण में जैसे वर्तें, वैसे ही तू वर्तना। इसी प्रकार किसी विवादास्पद कार्य और मनुष्य में भी तू उनके समान वर्तना। (अर्थात् जो ज्ञानी, आचारनिपुण और धार्मिक व्यक्ति हों, उनसे सीख लेकर अपना आचार सुधारना। आचार ऐसा विषय है, जिसमें कभी भी पूर्णतया सब स्थितियां नहीं बताई जा सकतीं। जो हमने न बताया हो, जिसमें तुझे शंका हो, उसे अन्य विद्वानों के आचरण से सीखना।) यही हमारी आज्ञा है। यही हमारा तुमको परामर्श है। यही वेद का गूढ़ उपदेश है। यही परम्परागत सीख है। इस प्रकार ही करने योग्य है। निश्चय से इसी प्रकार करने योग्य है।

यह कितनी सुन्दर सीख है। कहीं किसी उपदेश में कोई आचार्य कभी ऐसा कहता पाया गया है कि हममें अथवा हमारे उपदेश में कुछ कमी है? केवल महर्षि दयानन्द ऐसा कहते पाए गए हैं, जिन्होंने कहा था कि मैं भी मनुष्य हूं, मुझ में भी दोष हो सकते हैं; कभी मेरा कोई भी वचन व आचरण वेद-विरुद्ध हो, तो वेद को ही सर्वोपरि मानना। जो ज्ञानी और धार्मिक होते हैं, जिनको चेलों-चपाटों पर राज्य करने, उनका धन आदि हरने से कोई सरोकार नहीं होता, वे ही ऐसे महान् वचन बोल सकते हैं; अन्य सब तो अपनी झूठ-सच बातें मनवाने में लगे हैं। शिष्य भी विरले ही होते हैं, जो इन वचनों से अपने आचार्य की महानता समझ पाते हैं; अन्यों को तो गुरु में अविश्वास उत्पन्न हो जाता है. ..।

यदि इस सीख को आंशिक रूप में भी जीवन में उतार सकें, तो हमारा महान् कल्याण हो।

यहां हम पुनः पाते हैं कि सर्वकार द्वारा प्रचारित 'अतिथि देवो भवः', यह पाठ अशुद्ध है। सही पाठ 'अतिथिदेवो भव' है। भारत में शास्त्रों के पठन-पाठन की शोचनीय स्थिति और संस्कृत के अज्ञान को यह दर्शाता है।

तैत्तिरीय की कुछ अन्य सूक्तियां हैं-

शेष पृष्ठ २१ पर

ओहो! वह समर्पण भाव (4)

(राजेशार्य आट्टा, मो०:-०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! ऋषि दयानन्द की विचारधारा को उनके बलिदानी शिष्यों के त्याग ने आगे बढ़ाया। ऐसे घर फूँक कर तमाशा देखने वाले बलिदानियों में से थे महात्मा हंसराज। उस समय का बी.ए. पास नौजवान अंग्रेजी सरकार की बड़ी से बड़ी नौकरी पाकर आराम से जीवन विता सकता था। पर ऋषि मिशन के लिए उस आर्यवीर ने अपने सुखों को लात मारकर डी.ए.वी. विद्यालय (बाद में कॉलेज) लाहौर को जीवन-दान कर दिया। पूरे २५ वर्ष कॉलेज की सेवा कर ४७ वर्ष की अवस्था (जब लोग प्रधानाचार्य वनते हैं) में (१९११ ई.) लोगों के मना करने पर भी स्वेच्छा से सेवानिवृत्त हो गये। महात्मा जी के साथ उनके बड़े भाई मुल्कराज का भी त्याग वन्दनीय है, जिन्होंने अपना आधा वेतन महात्मा जी के परिवार के लिए दिया। (मुल्कराज जी का यह त्याग आर्यसमाज के लिए हानिकारक भी रहा क्योंकि वे मांसाहार के समर्थक थे और महात्मा हंसराज आर्थिक अहसान से दवे होने के कारण उनका विरोध नहीं कर सके) महात्मा जी के जीवन में ऐसा भी समय आया, जव भाई से मनमुटाव हो गया और जीवन निर्वाह के लिए मिलने वाली राशि बन्द हो गई। केवल छः आने उनके पास रह गये थे। छः आने के चने मंगवाए और सारे परिवार ने तीन दिन इन्हीं चनों से गुजारा किया।

महात्मा आनन्द स्वामी (खुशहालचंद) ने ऐसी ही एक घटना का उल्लेख किया है- पत्नी मृत्यु का शिकार हो चुकी थी और बेटा मौत से जूझ रहा था कि भाई को आर्थिक संकट ने आ दबोचा।... इन्हीं दिनों महात्मा जी के छोटे लड़के योधराज जी को निमोनिया हो गया।. .. आर्य समाज का काम वह नियम पूर्वक करते।... कष्टों और दुःखों से झुंझला कर एक बार उनकी बेटी ने कहा- "पिताजी! क्या अब भी परमात्मा है!" महात्मा जी को बेटी का डगमगाता विश्वास देखकर दुःख हुआ। कहने लगे- "हे बेटी, परमात्मा है ओर वह जो करता है ठीक करता है।"

इन्हीं दिनों की बात है कि जब महात्मा जी सब संकट झेल रहे थे। वड़ा बेटा बलराज लॉर्ड हॉर्डिंग पर बम फैंकने (१९११ ई.) के मामले में जेल में था, तो एक दिन किसी ने उनके घर से चावल, आटा, दाल इत्यादि चुरा लिये। चोरी का समाचार सुनकर महता अमीचन्द जी एडवोकेट महात्मा जी के पास पहुँचे और कहने लगे कि चोर ने रही-सही कसर निकाल दी। महात्मा जी कहने लगे- "चोरी किसी चोर ने नहीं की, किसी भूखे ने की है। हम उसकी सहायता सीधे हाथ न कर सके। उसका पूट भूखा था। वह वही वस्तुएं ले गया, जिनसे उसका पेट भर सके।"

महात्मा जी का बड़प्पन दर्शाने वाली एक घटना का वर्णन पूज्य राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने इस प्रकार किया है- सन् १९१९ ई. की घटना है। श्रीयुत महात्मा हंसराज पिण्डी सैयदाँ जिला झेलम (पाकिस्तान) में डी.ए.वी. स्कूल का शिलान्यास रखने के लिए पधारे। वहाँ कीकनाँ गाँव से पधारे लोगों ने उनसे आग्रह किया कि जाते-जाते हमारे यहाँ भी चरण डालकर हमारे मान को बढ़ावें। महात्मा जी ने भक्तों की विनीत विनती स्वीकार की। सड़क ठीक न होने के कारण महात्मा जी पैदल गये। व्याख्यान के बाद मण्डी बहाउद्दीन के मार्ग से लाहौर लौटना था। मार्ग रेतीला था। बड़ी कष्टप्रद यात्रा थी। सवारी के लिए घोड़े का प्रबन्ध किया गया। जब महात्मा

जी को पता चला कि घोड़ा उनके लिए है, तो उन्होंने घोड़ा वापस भेजने का प्रबल आग्रह किया। भक्तों ने भी आग्रह किया कि आप घोड़े पर चढ़ें, तो महात्मा जी ने कहा- "मैं यह अनुमति नहीं दे सकता कि आप मेरी सुख सुविधा पर धन का अपव्यय करें। यह कहाँ की शिष्टता है कि आर्य भाई तो पैदल चलें और मैं घोड़े पर सवार होकर चलूँ। मैं पिण्डी सैयदाँ से जलालपुर कीकनाँ आर्य भाइयों के साथ पैदल गया था। इसी प्रकार आर्य महाशयों के साथ अब मण्डी बहाउद्दीन भी पैदल ही चलूँगा। मुझे इसी में आनन्द की अनुभूति होती है।"

यदि आर्य समाज में अपने बलिदानी महापुरुषों के जीवनचरित् पढ़ने, सुनने और मनन करने की परम्परा होती, तो सम्भवतः सार्वदेशिक व प्रादेशिक आर्य सभाओं के टुकड़े न होते। महात्मा नारायण स्वामी के जीवन की घटना है- एक बार सार्वदेशिक सभा का वार्षिक चुनाव था। इस अवसर पर श्री महाशय कृष्ण जी ने दोनों महात्माओं (स्वामी श्रद्धानन्द व महात्मा नारायण स्वामी) को सम्बोधित करते हुए कहा- "प्रधान तो आप दोनों में से ही किसी ने बनना है। परस्पर बैठकर निर्णय कर लेवें कि इस बार किसे प्रधान बनना है। हमें बीच में मत डालो। हम चुनाव के वोटों के चक्र में नहीं पड़ना चाहते।" महाशय जी के इतना कहने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उठकर कहा कि मुझे तो पहले ही बहुत कार्य हैं और ये कार्यालय के काम मेरे बस के नहीं। महात्मा नारायण स्वामी जी ही यह संभाल सकते हैं, सो मैं प्रधान पद के लिए उनके नाम का प्रस्ताव करता हूँ। महात्मा नारायण स्वामी जी ने कहा- 'मैं धन नहीं ला सकता।' यह कहकर उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम का प्रस्ताव रख दिया। फिर श्री स्वामी जी ने कहा- "सभा के लिए धन मैं लाऊँगा, प्रधान नारायण स्वामी जी ही बनाए जायें।"

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के अत्यन्त विश्वस्त व प्रिय शिष्य स्वामी ईशानन्द ने हैदराबाद सत्याग्रह, भारत छोड़ो, हिन्दी सत्याग्रह व गोरक्षा आन्दोलन में भाग लेने के कारण परतंत्र व स्वतंत्र भारत में जेल की यातनाएँ झेलीं। स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के आदेश से लोहारू में आर्य समाज मन्दिर का निर्माण करने चले गये। हाँ, अत्याचारी नवाब के उसी लोहारू में, जहाँ चार-पाँच वर्ष पहले (३० मार्च १९४१) आर्य विद्वानों पर लाठियाँ बरसी थीं; स्वामी स्वतंत्रानन्द जी के सिर पर कुल्हाड़ा मार दिया गया था। नवाब के डर से कोई मिस्त्री, मजदूर भी नहीं मिलता था। निर्भीक गुरु के निर्भीक शिष्य ने स्वयं खून पसीना बहाकर लोगों में ऐसी आस्था पैदा कर दी कि वे आर्य समाज मन्दिर बनवाने में सहयोगी हो गये।

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी की मृत्यु के पश्चात् (१९५५ ई.) जब दीनानगर मठ वालों ने स्वामी ईशानन्द जी को कोषाध्यक्ष का भार सौंपना चाहा, तो वे लोहारू चले गये और वहीं से पत्र लिखा कि मेरी पुस्तकें तथा बिस्तर लोहारू भिजवा दो, क्योंकि मैं इस पद प्रतिष्ठा के लिए जीता तो घर पर ही रहता।

१९५७ के हिन्दी आन्दोलन के बाद नरेला वासियों ने आचार्य भगवानदेव तथा स्वामी ईशानन्द जी का हाथी पर जुलूस निकालने की सोची। स्वामी जी कन्या गुरुकुल में ठहरे हुए थे, वहीं से सूचना भेज दी- 'मैं ठहरा संन्यासी और संन्यासी के लिए यह सब वर्जित है। अतः आचार्य जी का ही जुलूस निकालें।' चरखी दादरी में गुरुदत्त जन्म शताब्दी के अवसर पर उनका सम्मान करना चाहा, तो वहाँ भी विनम्रतापूर्वक अस्वीकृति भेज दी।

स्वामी जी के भतीजे डॉ. सत्यबन्धु आर्य ने लिखा है कि इस आर्य संन्यासी ने वृद्धावस्था पेंशन व स्वतंत्रता सेनानी होने की पेंशन लेने से भी मना कर दिया था।

लोगों ने स्वामी जी की लोकप्रियता के कारण लोहारू में उनसे विधान सभा का चुनाव लड़ने का आग्रह किया। पहले तो स्वामी जी ने मना किया, पर वे न माने तो उनका रास्ता बन्द करने के लिए स्वामी जी ने ऐसी शर्तें लगा दीं कि चुपचाप चले गये।

महात्मा आनन्द स्वामी जी कहा करते थे कि यदि आर्य समाज राजनीति में गया, तो राजनीति शुद्ध हो जाएगी और यदि आर्य समाज में राजनीति घुस गई, तो आर्यसमाज का पतन हो जाएगा। सम्भवतः राजनीति का शुद्धिकरण करने के लिए ही आर्यसमाज के कई विद्वान् राजनीति में गये। दुर्भाग्य से उनमें से किसी-किसी में राजनीति घुस गई अर्थात् वे आर्यसमाज में विद्या, मान, सम्मान आदि पाकर भी पुनः जातिवाद के कीचड़ में गिर गये। जिन्हें आर्यसमाज ने पण्डित और आचार्य बनाकर मान-सम्मान दिया था, वे राजनीति में जकार पुनः दलित (नेता) हो गये।

दुःख ता यह है कि 'आग्नेय व्यक्तित्व' के रूप में आर्य समाज के बड़े से बड़े विद्वान् का मान-सम्मान पाने वाला संन्यासी स्वामी अग्निदेव भीष्म चतुर्वेदी भी इसी मानसिकता का शिकार होकर जीवन की सन्ध्याबेला में कांशीराम व मायावती के गीत गाने लगा। तिलक तराजू और तलवार को जूते मारने के नारे लगाने लगा। राम-कृष्ण को घृणित व पक्षपाती बताने लगा। ताड़का की देशभक्ति (शहादत) का प्रचार करने लगा। जरासन्ध को शूद्रों का राजा और दुर्योधन को गरीबों को राज्य देने वाला लिखने लगा। भोगवान् रजनीश को भगवान् बताने लगा। आर्य विद्वानों-विदुषियों की जाति का पता लगाने में जीवन बिताने वाले चतुर्वेदी की घृणित मानसिकता व मूर्खता उनके द्वारा लिखित-'अग्रे-अग्रे शूद्राः' पुस्तक में प्रकट हुई है। जब वे लिखते हैं- "आर्यसमाजी कहते हैं कि दयानन्द ने १७ बार जहर पिया और मीरा ने भी जहर पिया। दयानन्द मृत्यु को प्राप्त हुए और मीरा बच गई" (क्योंकि उसने रविदास को गुरु बनाया था)।

गुरुकुल वृन्दावन के आचार्य नरेन्द्र ने नेहरू जी व जगजीवनराम के कहने से आचार्यपद छोड़कर रिजर्व सीट पर चुनाव लड़ा व जीता। इस विषय में लिखा है- "प्रकाशवीर जी जो आर्यसमाज का प्रचारक था, उनको बड़ी जलन हुई कि आर्यसमाज को छोड़कर ये कांग्रेस में क्यों गये। इन्होंने व्यंग्य कसने शुरू किये कि हमने पंडित बनाया था फिर चमार बन गया। पंडित तो अपने गुणों से बनते हैं। किसी के बनाने से नहीं बनते।"

"शंकराचार्य के राज में जैन व बौद्ध बहुत मारे गए।... शंकराचार्य ३२ साल की उम्र में ही मर गया। फिर ब्राह्मणों के राज पर मुसलमानों ने हमला कर दिया। जितना शंकराचार्य के राज में स्त्रियों व शूद्रों ने दुःख पाया वह किसी के राज में नहीं पाया।"

यह ठीक है कि वर्तमान में शंकराचार्य के नाम से प्रचलित वेदान्त का अद्वैतवाद पूर्णतः वैदिक नहीं है। इसी कारण ऋषि दयानन्द जीवन भर जगत् को मिथ्या बताने वाले अद्वैतवाद के विरुद्ध बोलते व लिखते रहे। फिर भी उन्होंने शंकाराचार्य के जीवन पर कोई आक्षेप नहीं किया, अपितु उनकी प्रशंसा ही की है। देखिये-

"पंचशिख और शंकराचार्य इनका इतिहास देखना चाहिए कि उन्होंने सदा सत्य और सदुपदेश ही किये, उसी प्रकार संन्यासी मात्र को सदुपदेश करना चाहिए।"

"इनके पश्चात् श्रीयुत गौडपादाचार्य के प्रसिद्ध शिष्य स्वामी शंकराचार्य जी प्रादुर्भूत हुए। शंकर स्वामी वेद-मार्ग और वर्णाश्रम धर्म के मानने वाले थे। उनकी योग्यता कैसी उच्च कक्षा की थी, यह उनके बनाये शारीरिक भाष्य से विदित होता है। शंकर स्वामी के समय में जो अनेक पाखण्ड मत चले थे और जिनका उन्होंने खण्डन किया है, वह शंकर-दिग्विजय के निम्नलिखित श्लोक से प्रकट होते हैं-

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः कापालिकैर्वैष्णवै-

रन्यैरप्यखिलैः खलु खलैर्दुवादिभिर्वैदिकम्।।

इससे अनुमान किया जा सकता है कि श्रीमान् स्वामी शंकराचार्य ने वेद विरुद्ध मतों के खण्डन में कितना उद्योग किया है।" (उपदेश मञ्जरी, पृ. १६ व ८५)

"बाइस सौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़ देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है; इनको किसी प्रकार हटाना चाहिए। शंकराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी।" (स.प्र., एकादश समुल्लास)

जीवनभर दयानन्द के नाम पर रोटी खाने वाले स्वामी अग्निदेव भीष्म आर्य संन्यासी की मर्यादा भूलकर तथाकथित अम्बेडकरवादियों की बोली बोलने लगे। कौन नहीं जानता कि शंकराचार्य संन्यासी थे, राजा नहीं। उनके वेद-प्रचार के कारण बौद्ध व जैन मत की हार हुई थी, जिनसे उनका विनाश (ह्रास) हुआ। न कि इस्लामिक जेहाद की तरह कत्लेआम किया गया। यदि ऐसा होता, तो ऋषि दयानन्द जैसे निर्भीक सत्यवक्ता के मुख से शंकराचार्य के कार्य की प्रशंसा नहीं होती।

स्वयं को बड़ा योगी व ऋषि मानने वाले अग्निदेव भीष्म के पतन पर आँसू बहाते हुए हम स्वामी बेधड़क जी का पावन स्मरण करते हैं, जिनके विषय में प्रा. श्री जिज्ञासु जी ने लिखा है कि स्वामी बेधड़क दलित बर्ग में जन्मे थे। गाने की अच्छी कला थी। आर्य समाज सिरसा में सेवक के रूप में काम करते थे। एक बार स्वामी स्वतंत्रानन्द जी वहाँ आये, तो बेधड़क जी ने यशवन्त सिंह टोहनवी (आर्य संगीत रामायण आदि नाटकों के लेखक) के ईश्वर भक्ति व आर्यसमाज से सम्बन्धित भजन सुनाये। स्वामी जी ने इन्हें विस्तृत क्षेत्र में आकर धर्मप्रचार करने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके बाद बेधड़क जी ने उत्तर प्रदेश से लेकर बिलोचिस्तान तक वैदिकधर्म का प्रचार किया। देश के स्वाधीनता संग्राम में वे आठ बार जेल गये। आर्यसमाज के हैदराबाद सत्याग्रह तथा अन्य आन्दोलनों में भी जेल गये। संन्यासी बनने के बाद तो दक्षिण तक प्रचार किया।

स्वतंत्रता के बाद की बात है, पंजाब के मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों ने उन्हें काँग्रेस के टिकट पर एक रिजर्व सीट से हरियाणा क्षेत्र (राज्य बनने से पूर्व) में चुनाव लड़ने को कहा। काँग्रेस की वह सीट खतरे में थी। स्वामी बेधड़क ही जीत सकते थे। पर दयानन्द के मतवाले भक्त ने विधानसभा का टिकट ठुकराते हुए कहा- "मैं संन्यासी हूँ। चुनाव तथा दलगत राजनीति मेरे लिए वर्जित है। ऋषि दयानन्द ने तो मुझे दलित से ब्राह्मण तथा संन्यासी तक बना दिया। आर्यसमाज ने मुझे ऊँचा मान देकर पूज्य बनाया है और आप मुझे जात पात के पचड़े में फिर डालना चाहते हैं।"

ओहो! ऐसे महान् संन्यासी पर सैकड़ों अग्नि देव कुर्बान किये जा सकते हैं। स्वामी वेदानन्द तीर्थ जैसे महान् विद्वानों का सान्निध्य पाकर भी कोई घृणित जाति-पाति के दलदल में पड़ा रहा, यह बड़े आश्चर्य की बात है। सम्भवतः ऐसे लोगों में कृतज्ञता के भाव जगाने के लिए ही पण्डितराज जगन्नाथ ने लिखा हो-

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-

न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि।

रे राजहंस! वद तस्य सरोवरस्य

कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः।।

"हे राजहंस! जिस सरोवर में आपने कमल डण्ठल खाये हैं, जहाँ पानी पिया है, कमलों का सेवन किया है। बताओ उस सरोवर के उपकार का बदला किस कार्य से चुकाओगे।

□□

सत्य का मार्ग ही जीवन की सफलता का मार्ग है

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो. 0941298512)

मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है? इसके उत्तर में कह सकते हैं कि सत्य को जानना, समझना, उस पर गहनता से विचार करना, ऋषि दयानन्द सरस्वती आदि महापुरुषों के जीवनचरितों व उपदेशों का अध्ययन करना, ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का सत्य ज्ञान कराने वाले वेद एवं सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों को प्राप्त करना व उनका अध्ययन करना, यह सब करके संसार व जीवनविषयक सत्य का निर्धारण करना और उसका पालन करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य प्रतीत होता है। एक वैदिक प्रार्थना बहुत प्रचलित है- **'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृत गमय'**। इसमें कहा गया है - 'हे सृष्टि बनाने, चलाने व इसकी प्रलय करने वाले परमात्मन्! आप सत्य व असत्य को जानते हैं। आप हमें असत्य से हटा कर सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा करें। मैं असत्य का आचरण न करूं और जीवन में सदैव सत्य का ही आचरण करूं, सदा सत्य व प्रकाश के मार्ग पर ही चलूं और जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाऊं।' इस वैदिक प्रार्थना में जो कुछ कहा गया है, उससे कोई भी मनुष्य असहमत नहीं हो सकता। एक अन्य प्रार्थना जिसे देश का ध्येय वाक्य भी कह सकते हैं, वह है **'सत्यमेव जयते'**। इसका अर्थ है कि सत्य की ही सदा विजय होती है। सत्य कभी पराजित नहीं होता। अतः जिसकी सदा विजय हो और जो कभी पराजय को प्राप्त न हो, उसी को हमें मानना चाहिये व आचरण में लाना चाहिये।

जब हम अपने प्राचीन ऋषि मुनि व विद्वानों के जीवनों पर दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि उनका जीवन सत्य को जानने व उसके आचरण को ही समर्पित था। वह पर्वतों की कन्दराओं, घने वनों में स्थित आश्रमों व कुटिया बना कर वहां तप की साधना करते थे। तप का अर्थ ही सत्य को जानना व उसका आचरण करना होता है। सत्य अर्थात् ईश्वर के सत्य गुण, कर्म व स्वभाव को जानकर उनका उसके अनुरूप स्तुति व स्तवन करना ही ईश्वर की पूजा कहलाता है। विश्व विख्यात ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि स्तुति का अर्थ स्तुत्य वस्तु के सत्य गुणों को जानकर उसका वर्णन करना होता है। ईश्वर की स्तुति की बात करें, तो इसके गुणों सत्य चित्त, आनन्द, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, निरभिमानी, पवित्र, धार्मिक, पक्षपात रहित होकर न्याय करने वाला, अनादि, नित्य, अमर, अविनाशी, अजन्मा, सृष्टि को बनाने, चलाने, पालन करने व प्रलय करने वाला, सब जीवों को उनके कर्मों का फल देने वाला, जीवात्माओं को जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म देने वाला, अजर, अभय आदि गुणों का उच्चारण व प्रशंसा कर अपने गुणों को भी इसके अनुसार बनाना होता है। ईश्वर व अपने से बड़ों की स्तुति करने से अहंकार का नाश होता है। अहंकार का नाश परमावश्यक भी है। अहंकारी मनुष्य का नाश हो जताा है। रावण व दुर्योधन के उदाहरण हमारे सामने हैं। ईश्वर व किसी महापुरुष की सत्य व यथार्थ स्तुति हमें नाश से बचाती है। किसी के प्रति नतमस्तक होने से अहंकार दूर हो जाता है। उसके प्रति श्रद्धा व आदर की भावना उत्पन्न होती है। ईश्वर सबसे महान व सर्वोत्तम सत्ता है, जिससे संसार के सभी मनुष्य व प्राणी लाभान्वित हैं। अतः सबको ईश्वर व परोपकारी, स्वार्थशून्य, चरित्रवान महात्माओं की स्तुति करनी चाहिये। महापुरुषों के जीवन में अधिकांश ईश्वर के समान व उसके जैसे न्यूनाधिक गुण होते हैं, जिससे संसार के सभी लोग, कोई किसी भी मत का अनुयायी क्यों न हो, उन महापुरुषों का मत-पन्थ की संकीर्ण मान्यताओं से ऊपर उठकर उनका सम्मान करते हैं। यही कारण है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर भी श्री राम, श्री कृष्ण, चाणक्य, युधिष्ठिर सहित अर्वाचीन लोगों में महर्षि दयानन्द, योगी अरविन्द, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, शहीद भगत सिंह

आदि को आज भी लोग सम्मान देते हैं और उन्हें याद करते हैं। देश के लिए शहीद सेना के जवानों के प्रति भी लोगों का हृदय भावुक होकर अश्रुधारा बहाने लगता है। इसका उदाहरण है कि आज से ६५ वर्ष पहले गाया गया गीत

'ऐ मेरे वतन के लोगो जरा आंख मेंभर लो पानी,
जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी'

आज भी लोकप्रिय है। इसे सुन कर सभी देश भक्तों की आंखें नम हो जाती हैं। इस गीत में सत्य की शक्ति ही, देश के लिए बलिदान की भावना जिसका पर्याय है, छुपी हुई है जो हमें आकर्षित करती है और अपनी ओर खींचती है।

सत्य की सबसे अधिक प्रतिष्ठा विज्ञान के क्षेत्र में है। वहां युवक विज्ञान पढ़ कर व पूर्व के प्रौढ़ वैज्ञानिक सृष्टिविषयक सत्य रहस्यों की खोज में लग जाते हैं। पढ़े हुए का चिन्तन मनन करते हैं। नई खोज की योजना बनाते हैं। नये- नये प्रयोग करते हैं और उसके परिणामों का अध्ययन व विश्लेपण करते हैं। यह क्रम चलता रहता है। एक समय आता है कि जब उनका लक्ष्य सिद्ध हो जाता है। इसी प्रक्रिया को अपना कर विज्ञान आज यहां तक पहुंचा है कि जब उसे विज्ञान के द्वारा तृण व तिनके से लेकर ब्रह्माण्ड तक का अधिकांश ज्ञान तो प्राप्त हुआ ही है, उसने ऐसे आविष्कार भी किए हैं कि जिनसे आज हमारा जीवन अत्यन्त सुविधापूर्ण व आसान बन गया है। ऐसा सुविधापूर्ण जीवन सृष्टि के आदि काल के बाद कभी रहा हो, इसका कहीं उल्लेख नही मिलता। आज कम्प्यूटर व स्मार्ट फोन का युग है। संसार हमारी मुट्ठी में आ गया है। कोई भी जानकारी प्राप्त करनी होती है, तो वह हमें गुगल की सहायता से कुछ ही क्षणों में ही सुलभ हो जाती है। इतिहास में ऐसे उन्नत युग की कहीं चर्चा नहीं है। विज्ञान आखिर है क्या? इस पर विचार करें, तो इसका उत्तर यही मिलता है कि संसार के सत्य रहस्यों को जानना व उसका ज्ञान प्राप्त करना ही विज्ञान है। इस जाने हुए विज्ञान का उपयोग कर अपनी सुविधाओं की वस्तुओं का निर्माण करना ही आविष्कार है व आविष्कार से निर्मित उत्पाद विज्ञान की देन कहलाते हैं। जैसे- कम्प्यूटर, हवाई जहाज, रेलगाड़ी आदि। धर्म भी ईश्वर, आत्मा, मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों से संबंधित सत्य रहस्यों की खोज व उसके आचरण का ही नाम है, जिसे साम्प्रदायिक मतों ने व राजनीति दलों ने अपनी वोट बैंक की नीति के कारण उपेक्षित बना दिया है।

हम इस संसार को देखते हैं, तो इसकी विशालता को जानकर हमारा सिर घूम जाता है। संसार में ऐसे भी सूर्य पिण्ड बताए जाते हैं, जिसका प्रकाश अभीं तक हमारी धरती पर नहीं पहुंचा है। प्रकाश की गति प्रति सैकिण्ड १,८६,००० मील है। इससे ब्रह्माण्ड की विशालता का ज्ञान होता है। हम जानते हैं कि कोई भी रचना बिना कर्ता के नहीं होती। अतः इतना विशाल सुव्यवस्थित ब्रह्माण्ड भी बिना एक कर्ता 'ईश्वर' के बन व चल नहीं सकता। हमें संसार को बनाने वाले उसी ईश्वर की खोज करनी है। उसे अपनी आत्मा में प्राप्त करना है। सच्चे विद्वानों व ज्ञानियों की शरण लेकर उनसे ईश्वर के स्वरूप व गुणों को जानना है। हमें अपनी आत्मा के स्वरूप व उसके अतीत व भविष्य पर भी विचार करने के साथ ज्ञानियों व पुस्तकों से उसका ज्ञान प्राप्त करना है और उसके उत्कर्ष व उन्नति के लिए पुरुषार्थ करना है। यह तभी हो सकता है कि जब हम सत्य की प्रतिष्ठा करेंगे और बुद्धि की जड़ता और अन्धविश्वासों से ऊपर उठेंगे। यदि परम्परागत मान्यताओं में बने रहेंगे, तो शायद हम सत्य को जान न सकें। हमें धर्म विज्ञानी व सत्य-धर्म शोधार्थी बनना होगा। इससे हमें अनेक नये रहस्यों का ज्ञान होगा जिससे हम देश व संसार का कल्याण कर सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थ वेद, उपनिषद, दर्शन आदि को भी गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिये। ऐसा ऋषि मुनि व शास्त्रों के ज्ञाताओं का कथन है। सत्य में ही जीवन को लगाना और नये-नये बहुमूल्य मोतियों को प्राप्त करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। आइये! जीवन के लक्ष्य "सत्य" पर विचार करें और उस को प्राप्त करने के लिए आज ही सत्य के मार्ग पर चलना आरम्भ कर दें।

❑❑

भारतवर्ष के उत्थान में महर्षि दयानन्द का योगदान

(कृष्ण चन्द्र गर्ग, पंचकूला, दूर. 0172-4010679)

१. जब महर्षि दयानन्द आए, तब हिन्दू जाति मृत प्रायः हो चुकी थी, जैसे उसकी रीढ़ की हड्डी ही न हो। मुसलमानों और ईसाइयों के तर्कों का वे उत्तर न दे पाते थे। वे धड़ाधड़ मुसलमान और ईसाई बनते जा रहे थे। महर्षि दयानन्द ने हिन्दुओं के साथ-साथ इस्लाम और ईसाइयत की कमजोरियों का पर्दाफाश किया। हिन्दुओं को उनके वास्तविक वैदिक धर्म से परिचित कराया। हिन्दुओं में आत्मगौरव और आत्मसम्मान भरा। हिन्दू मुसलमान और ईसाई बनने बन्द हुए। उल्टा मुसलमान और ईसाई बने हिन्दुओं को वापिस वैदिक धर्म में आने के लिए प्रेरित किया गया। हिन्दुओं को घटाओ की बजाए बढ़ाओ की प्रेरणा दी। जो बाद में स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि आन्दोलन के रूप में सामने आया।

भारत के गवर्नर जनरल रहे श्री सी.राजगोपालाचार्य ने कहा था- "Dayanand came when there was chronic danger of Islam on one side and of Christnity on the other. He saved Hinduism from all dangers fighting against them boldly" अर्थ- दयानन्द ऐसे समय में आए, जब एक तरफ इस्लाम का और दूसरी तरफ ईसाई का बड़ा खतरा था। उन्होंने उनसे बहादुरी से लड़कर हिन्दुओं को सब खतरों से बचाया।

२. **वेद**- महर्षि दयानन्द जब आए, तब वेद लुप्त प्रायः हो चुके थे। पण्डित लोग कहते थे कि वेदों को तो शंखासुर ले गया है। महर्षि दयानन्द ने उन्हें पुनः स्थापित किया। उबट, सायण, महीधर आदि आचार्यों ने वेदों के अर्थ का अनर्थ कर दिया था। उन्हें देखकर जर्मनी के संस्कृत के विद्वान मैक्समूलर ने सन् १८७० में वेदों को गडरियों के गीत, बच्चों की बिलबिलाहट, जादू टोने आदि की पुस्तकें बताया था। महर्षि दयानन्द ने बताया कि वेद ईश्वर का दिया ज्ञान है जो अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा- इन चार ऋषियों के मनों में ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में दिया। यह सभी मनुष्यों के लिए मानवता का ज्ञान और विधान है।

महर्षि का वेदभाष्य पढ़ने के बाद सन् १८८२ में मैक्समूलर ने कैम्बरिज विश्वविद्यालय, इंग्लैण्ड में ICS के विद्यार्थियों को भारत के सम्बन्ध में सात भाषण दिए थे। वे सातों भाषण "India, what can it teach us" नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए थे। तीसरे भाषण में मैक्समूलर ने कहा था- "I maintain that for a study of man there is nothing in the world equal in importance with the Vedas." अर्थ- मैं मानता हूँ कि मानवता के अध्ययन के लिए वेदों के समान महत्वपूर्ण संसार में और कुछ भी नहीं है।

UNESCO ने ऋग्वेद को धरोहर (Heritage) स्वीकार किया है।

श्री अरविन्द घोष ने इसी सम्बन्ध में लिखा है- "There is nothing fantastic in Dayanand's idea that Vedas contain truth of science as well as truth of religion. I will add my own conviction that Vedas contain the other truth of science the modern science does not at all possess" अर्थ- दयानन्द का विचार कि वेदों में विज्ञान और अध्यात्म दोनों विद्यमान हैं, अजीब नहीं है। मैं तो यह भी मानता हूँ कि वेदों में वह विज्ञान भी है, जिसे आज के वैज्ञानिक नहीं जानते।

३. **हिन्दी भाषा**- हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनवाने का श्रेय महर्षि दयानन्द को है। अब से लगभग १४५ वर्ष

पूर्व सबसे पहले महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को देश की भाषा के रूप में पहचाना था। वे स्वयं गुजराती थे और संस्कृत के विद्वान् थे। पर उन्होंने अपना सारा लेखन और भाषण हिन्दी में किया। उनका दृढ़ मत था कि देश की एकता के लिए सारे देश की एक भाषा हो और वह भाषा देवनारी लिपि में हिन्दी ही हो सकती है। हिन्दी को वे **'आर्य भाषा'** के नाम से पुकारते थे।

बाद में मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपना साहित्य हिन्दी में देकर हिन्दी के उत्थान में बड़ा योगदान किया।

गान्धी जी ने देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाने वाली हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा को देश की भाषा बनाने की वकालत की थी और उस खिचड़ी भाषा का नाम हिन्दोस्तानी रखा था।

परन्तु भारत के संविधान निर्माताओं ने १४ सितम्बर १६४६ को १२ के मुकाबले ३१२ के भारी बहुमत से देवनागरी लिपि में हिन्दी को देश की राजभाषा के तौर पर स्वीकार किया था। हिन्दी भाषा के विस्तार के लिए आवश्यकता पड़ने पर शब्द लेने के लिए हमारे संविधान में विशेष तौर पर संस्कृत भाषा को नामित किया गया है।

४. स्वतन्त्रता आन्दोलन- महर्षि दयानन्द ने अपनी लेखनी और भाषणों द्वारा हिन्दुओं में स्वाधीनता की भावना भरी, जिसके परिणामस्वरूप आर्यों ने स्वाधीनता संग्राम में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। **अदीना स्याम् शरदः शतम्**- अर्थात् हम स्वतन्त्र रहते हुए सो वर्ष तक जीएं- का वेदमन्त्र महर्षि ने हमें दिया।

कांग्रेस अध्यक्ष पट्टाभिसीता रमैया ने महर्षि दयानन्द को राष्ट्र पितामह बताया था जबकि गांधी जी को राष्ट्रपिता। जो-जो कार्य गान्धी जी ने अपनाए, वे सब उससे पचास साल पहले महर्षि दयानन्द ने आरम्भ किए थे- उदाहरण- स्वदेशी, खादी और ग्रामोद्योग, अछूत-उद्धार, महिला-उत्थान, गोसंरक्षण आदि। महर्षि ने बीज बोया और गान्धी जी ने फसल काटी।

डॉ. एनी बीसैंट एक अंग्रेज औरत थी, जिसने भारत की स्वतन्त्रता के लिए काम किया। उसने कहा था- "When the Swaraj Temple is built there will be images of the leaders of the freedom movement and that of Swami Dayanand will be the tallest." अर्थ- जब स्वराज का मन्दिर बनेगा, उसमें स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेताओं के चित्र (बुत) लगेंगे और उनमें स्वामी दयानन्द का चित्र (बुत) सबसे बड़ा होगा।

मोती लाल नेहरू ने जेलों में घूमने के बाद गान्धी को जो रिपोर्ट दी थी उसमें कहा गया था कि जेलों में ८० प्रतिशत आर्यसमाज के लोग हैं।

लाला लाजपत राय ने कहा था- आर्यसमाज कट्टर राष्ट्रीयता में विश्वास रखता है।

५. महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रेरित होकर स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, पण्डित लेखराम, पण्डित गुरुदत्त, लाला लाजपत राय, भगतसिंह के दादा अर्जुन सिंह, पिता किशन सिंह, चाचा अजीत सिंह आदि कितने सज्जन समाज और राष्ट्र की सेवा में उतरे।

स्वामी श्रद्धानन्द, जिनका नाम पहले मुंशीराम था, ईसाइयत की ओर झुक रहे थे। महर्षि दयानन्द के साथ मुलाकात के बाद पक्के आर्य और राष्ट्रभक्त बन गए। लाला लाजपत राय इस्लाम की तरफ झुके हुए थे। वे आर्यों की संगति से आर्य बने और देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते हुए शहीद हुए।

मौलवी महबूब अली जिला बागपत बड़ौत के पास बरवाला में बड़ी मस्जिद के इमाम थे। महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर वे इस्लाम को छोड़कर आर्य बन गए। अब वे महेन्द्रपाल आर्य के नाम से वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

६. शिक्षा- महर्षि दयानन्द ने बच्चों के लिए शिक्षा पर विशेष बल दिया था। उनके शिष्य आर्यों ने बहुत से आर्य स्कूल व कालिज स्थापित किए तथा दयानन्द ऐंगलो वैदिक (D.A.V.) नाम से शिक्षण संस्थाओं का देश भर में जाल बिछा दिया है।

हिन्दू समाज में लड़कियों को पढ़ाना बुरा माना जाता था। महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का ही प्रभाव है कि अब सभी हिन्दू अपनी लड़कियों को शिक्षा, बल्कि उच्च शिक्षा दिला रहे हैं।

७. **समाज सुधार के कानून-** हिन्दू विधवा स्त्री के पुनर्विवाह के विरुद्ध थे। सन् १८५६ में पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की कोशिश से अंग्रेज सरकार ने विधवा विवाह एक्ट बना दिया, जिससे विधवा स्त्री के पुनर्विवाह को मान्यता मिल गई। परन्तु पण्डितों के विरोध के चलते यह कानून व्यवहार में न आ सका। बाद में जब आर्यसमाज ने इस काम को अपने हाथ में लिया तभी विधवा विवाह का प्रचलन हुआ।

हिन्दू अपनी छोटी उमर की लड़कियों की शादी बड़ी उमर के आदमियों के साथ कर देते थे। आर्यसमाज के प्रतिष्ठित नेता श्री हरविलास शारदा के प्रयास से सन् १६२६ में अंग्रेज सरकार ने इसके विरुद्ध कानून बना दिया जिसका नाम है- Child marriage restraint Act। तब उसका विरोध तिलक जैसे महानुभाव ने भी किया था। युक्ति थी ईसाई सरकार को हमारे धर्म में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है।

हिन्दू समाज में पति के मरने पर पत्नी को पति के साथ ही जीवित ही जला देने की कुप्रथा थी, जिसे सतीप्रथा कहते हैं। राजा राममोहन के प्रयत्न से अंग्रेज सरकार ने सन् १८२८ में इसके विरुद्ध कानून बनाया। बाद में आर्यसमाज ने इसे हाथ में लिया और दृढ़ता से इसका पालन किया और करवाया।

जन्म की जातपात तोड़कर विवाह को वैधता देने वाला जो कानून है, वह आर्यसमाज के बड़े नेता श्री घनश्याम सिंह गुप्त के प्रयास से अंग्रेज सरकार ने सन् १६३७ में बनाया था। उस एक्ट का नाम Arya Marriage Validation Act है। महर्षि दयानन्द ने जन्म की जातपात और छुआछूत को पूरी तरह नकारा था।

८. **सत्यार्थप्रकाश-** महर्षि दयानन्द ने एक अमर ग्रन्थ **'सत्यार्थप्रकाश'** दिया। उसमें जन्म से मृत्यु तक मनुष्य को क्या-क्या करना चाहिए और कैसे जीना चाहिए सब ज्ञान वेदों के अनुकूल दिया गया है, संसार में व्याप्त सभी पंथों (मजहबों) के गुण-दोष बता कर सभी को सचेत किया गया है, वेद के सार्वकालिक और सार्वभौमिक मानव धर्म पर प्रकाश डाला गया है और ईवर के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया गया है, वेद के सार्वकालिक और सार्वभौमिक मानव धर्म पर प्रकाश डाला गया है और ईश्वर के सच्चे स्वरूप का वर्णन किया गया है। 'सत्यार्थ प्रकाश' में ३७७ ग्रन्थों के सन्दर्भ हैं और १५४२ वेद मन्त्रों और श्लोकों के उदाहरण हैं। "सत्यार्थप्रकाश" को पढ़कर लाखों लोग पाखण्ड, अन्धविश्वास, अज्ञान से निकल कर सत्य के प्रकाश का आनन्द लेने लगे हैं।

'सत्यार्थप्रकाश' के सम्बन्ध में वीर सावरकर ने कहा था- "हिन्दुओं की ठण्डी रगों में गर्म खून का संचार करने वाला ग्रन्थ **'सत्यार्थप्रकाश'** अमर रहे। **सत्यार्थप्रकाश** की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।"

६. **पाखण्ड और अन्धविश्वास पर चोट-** महर्षि दयानन्द और उनके शिष्य आर्यों ने मूर्तिपूजा, ग्रह, फलित ज्योतिष, भूत-प्रेत, तागा-तावीज, जादू-टोना आदि पाखण्ड और अन्धविश्वास पर तगड़ी चोट मारी। इन्हें अज्ञानता से पैदा हुई गलत धारणाएं बताया। ईश्वर का सच्चा स्वरूप बताकर मूर्तिपूजा को हानिकर बताया। मनुष्य के सुख-दुख का कारण ग्रह नहीं। ग्रह तो जड़ हैं। वे किसी का भला या बुरा नहीं कर सकते। सुख-दुःख का कारण मनुष्य के अपने अच्छे-बुरे काम हैं। उन कामों के फलस्वरूप ही मनुष्य को सुख-दुःख होता है। फलित ज्योतिष (Astrology) का वेदों में या किसी भी वैदिक ग्रन्थ में कहीं कोई नामो-निशान नहीं है। ये सारी बातें साधारण लोगों को ठगने के साधन मात्र हैं। जो पहले था और अब नहीं रहा उसे भूत कहते हैं। जैसे बीते

समय का नाम भूतकाल है। किसी व्यक्ति के मरने पर मृतक शरीर का नाम प्रेत है। तागा-तावीज, जादू-टोना आदि भी धूर्तों के द्वारा पैदा किए हुए टोटके हैं।

१०. साहित्य शोधन - आर्यों (हिन्दुओं) के साहित्य को स्वार्थी लोगों ने अपनी मन मर्जी से मिलावट करके दूषित कर दिया है। महर्षि दयानन्द और उनके शिष्य आर्यों ने उस मिलावट को अलग करके सत्य साहित्य प्रकाशित किया, जिनमें वाल्मीकि रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि प्रमुख हैं। महर्षि दयानन्द ने सत्य और असत्य ग्रन्थों की सूची हमें दी कि कौन से ग्रन्थ पढ़ने चाहिए और कौन से नहीं। जो ग्रन्थ सत्य वैदिक धर्म को प्रतिपादित करते हैं, उन्हें पढ़ने योग्य की सूची में रखा और जो असत्य बातों से भरे हैं, उन्हें न पढ़ने योग्य ग्रन्थों की सूची में रखा।

श्री कृष्ण के पवित्र और महान जीवन चरित को कलंकित करके प्रसारित किया जाता है। महर्षि दयानन्द ने इस पर तगड़ी आपत्ति उठाई और कहा कि 'महाभारत' की पुस्तक के अनुसार श्री कृष्ण एक धर्मात्मा और परोपकारी पुरुष थे। जिन्होंने जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी बुरा काम नहीं किया। महाभारत में राधा नाम की किसी स्त्री का कोई ज़िकर नहीं है।

११. नमस्ते और गायत्री मन्त्र- महर्षि दयानन्द ने अभिवादन के लिए सार्थक शब्द 'नमस्ते' दिया। जब भी दो व्यक्ति मिलें तो आपस में नमस्ते कहें। नमस्ते शब्द है- नमः + ते अर्थात् मैं आपका सम्मान करता हूँ। उसी में बड़ों के लिए आदर और छोटों के लिए प्यार की भावना छिपी है। वेदों में तथा अन्य वैदिक ग्रन्थों में अभिवादन के तौर पर **'नमस्ते'** शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

महर्षि दयानन्द ने विचारने के लिए तथा अमल करने के लिए वेद का मन्त्र **'गायत्री मन्त्र'** दिया। इस मन्त्र में परमात्मा से उत्तम बुद्धि के लिए प्रार्थना की गई है। सभी मनुष्यों को उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए अच्छा सात्विक भोजन लेना चाहिए तथा बढ़िया पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए।

आज देश-विदेश में करोड़ों लोग अभिवादन के तौर पर **'नमस्ते'** शब्द का प्रयोग करते हैं तथा **गायत्री मन्त्र** का पाठ करते हैं

१२. प्रसिद्ध कवि सूय्रकान्त त्रिपाठी निराला ने कहा था- हमारा जितना उपकार महर्षि दयानन्द ने किया है उतना और क़िसी ने नहीं किया।

१३. मुंशी प्रेमचन्द की लेखनी में समाज सुधार के विषय पर महर्षि दयानन्द का प्रवल प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने एक कहानी लिखी है **'आपका चित्र'**। कहानी के नायक ने अपने कमरे में महर्षि दयानन्द का चित्र लटका रखा है। वह बता रहा है कि यह चित्र उसने क्यों लटका रखा है। "मैं उसे केवल इस कारण से अपने कमरे में लटकाए हुए हूँ कि स्वामी जी के जीवन का उच्च और पवित्र आचरण सदा मेरी आँखों के सामने रहे। जिस घड़ी सांसारिक लोगों के व्यवहार से मेरा मन ऊब जाए, जिस समय प्रलोभनों के कारण पग डगमगाएं अथवा प्रतिशोध की भावना मेरे मन में लहरें लेने लगे अथवा जीवन की कठिन राहें मेरे साहस व धैर्य की अग्नि को मन्द करने लगें, उस विकट बेला में उस पवित्र मोहिनी मूर्त के दर्शनों से आकुल-व्याकुल हृदय को शान्ति हो, दृढ़ता धीरज बने रहें, क्षमा व सहनशीलता के मार्ग पर पग चलते चलें तथा मैं अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि इस चित्र से मुझे लाभ पहुँचा है और एक बार नहीं, कई बार।"

❋❋□□

'दयानन्द सन्देश' परिवार की ओर से समस्त देशवासियों को दीपावली पर्व की हार्दिक शुभकामनाएं।

स्वामी जी का मूर्तिपूजा पर कड़ा प्रहार, सत्यार्थ प्रकाश में

(खुशहाल चन्द्र आर्य, कोलकाता, मो. - 09830135794)

मैंने यह लेख महर्षि कृत उनके अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास को पढ़ कर लिखा है। इसमें स्वामी जी ने प्रश्नोत्तर द्वारा मूर्ति पूजा पर तर्क के आधार पर कड़ा प्रहार किया है, जिसको पढ़कर विज्ञ पाठकगण अवश्य ही समझ लेंगे कि ईश्वर की उपासना केवल निराकार मानकर ही की जा सकती है और इसी उपासना से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। ईश्वर को साकार मान कर मूर्तिपूजा द्वारा ईश्वर की उपासना वेद विरुद्ध तो है ही साथ ही सही उपासना हो ही नहीं सकती। मैं समझता हूँ कि इस लेख को पढ़कर पाठकगण अवश्य ही लाभ उठावेंगे और मूर्तिपूजा छुड़ाने में इससे काफी सहयोग मिलेगा। यदि थोड़ा भी सहयोग मिला, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। लेख इस भाँति है-

प्रश्न- मूर्ति पूजा में पुण्य नहीं तो पाप भी नहीं।

उत्तर- कर्म दो किस्म के होते हैं।

विहित :- जो कर्तव्यता से वेद में सत्यभापणदि प्रतिपादित है। दूसरा **निषिद्ध** :- जो अकर्मण्यता से मिथ्या भापण आदि वेद में निपिद्ध है। जैसे विहित का अनुप्ठान करना वह धर्म है। जव वेद से विरुद्ध मूर्तिपूजादि कर्म आप करते हो, तो पापी क्यों नहीं।

प्रश्न- साकार में मन स्थिर होता है और निराकार में स्थिर होना कठिन हैं इसलिए मूर्तिपूजा करनी चाहिए।

उत्तर- साकार में मन स्थिर कभी भी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमने और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है, तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता, किन्तु इसी के गुण-कर्म-स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न हो कर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थित होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, भिन्न आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता, इसलिए मूर्ति-पूजा करना अधर्म है।

प्रश्न- जो अपने आर्यावर्त्त में "पञ्चदेव पूजा" जो कि प्राचीन काल से चला आता है, उसका "पञ्चयतन पूजा" जो शिव, विष्णु, अम्बिका, गनेश और सूर्य की मूर्ति बनाकर पूजते हैं, तो क्या वही "पञ्चयतन पूजा" है या नहीं?

उत्तर- किसी प्रकार की मूर्ति पूजा न करना किन्तु "मूर्तिमान" की पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिए। वह पञ्चदेव पूजा या "पञ्चयतन पूजा" शब्द बहुत अच्छे अर्थ वाला था, परन्तु मूढ़ों ने इस सदर्थ को छोड़कर, असत्य अर्थ पकड़ लिया जो आजकल शिवादि पाँचों की मूर्तियां बनाकर पूजते हैं उनका खण्डन तो कर चुके हैं। सच्ची पञ्चयतन पूजा कुछ मन्त्रों के आधार पर इस प्रकार है :-

प्रथम मूर्तिमती पूज्यनीय देवता के रूप में "माता", जिसको तन, मन, धन से तथा सेवा से सन्तान को चाहिए कि उसे प्रसन्न रखे। उसका मन किसी प्रकार से भी दुःखी न करे। दूसरा सत्कर्त्तव्य देव के रूप में "पिता", उसकी भी माता के समान सेवा करे। तीसरा देव जो विद्या को देने वाला है, वह है "आचार्य"। उसकी भी तन, मन, धन से सेवा करनी चाहि। चौथा देव है "अतिथि" जो विद्वान्, धार्मिक, निप्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सुखी करता है, उसकी सेवा करनी चाहिए। पाँचवाँ स्त्री के लिए पति और पुरुप के लिए पत्नी पूज्यनीय है। ये पाँच मूर्तिमान देव हैं, जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर की प्राप्ति होने की सीढ़ियाँ हैं। इनकी सेवा न करके जो पापाणादि मूर्ति पूजतें हैं, वे आतीव पामर, नरक गामी

हैं।

प्रश्न- माता पिता की सेवा करें और मूर्तिपूजा भी करें, तब तो कोई दोष नहीं।

उत्तर- पाषाणादि मूर्तिपूजा को सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि, प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना, स्वीकार करते हैं। इसको मूढ़ों ने इसलिए स्वीकार किया है कि जो माता-पितादि के सामने नैवेद्य या भेंट-पूजा धरेंगे तो स्वयं खा लेंगे और भेंट-पूजा भी ले लेंगे। हमारे मुख या हाथ में कुछ न पड़ेगा। इसीलिए वे पाषाणादि की मूर्ति बना, उनके आगे नैवेद्य व भेंट-पूजा चढ़ाते हैं, ताकि उनको मिलता रहे।

प्रश्न- जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है, वैसे ही वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी?

उत्तर- नहीं हो सकती। क्योंकि उस मूर्ति के जड़त्व धर्म, आत्मा में आने से विचार शक्ति घट जाती है। विवेक के विना वैराग्य, वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के बिना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है, सो उनके संग उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है। क्योंकि जिसका गुण या दोष न जानके उसकी मूर्ति मात्र देखने से प्रीति ही नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुण ज्ञान है।

प्रश्न- रामेश्वर में रामचन्द्र जी ने मूर्ति स्थापन किया है। यदि मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध होती, तो रामचन्द्र जी मूर्ति स्थापन क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते?

उत्तर- रामचन्द्र जी के समय में शिवलिंग या मन्दिर का नामोनिशान भी नहीं था। बाद में यह ठीक है कि किसी दक्षिण देशस्थ "राम" राजा ने मन्दिर बनवा, लिंग का नाम "रामेश्वर" धर दिया हो। जब रामचन्द्र जी सीता को ले हनुमान आदि के साथ लंका से चले, आकाश मार्ग से विमान पर बैठ कर अयोध्या को आ रहे थे, तब सीता जी से कहा कि- हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल हो कर घूमते थे और इसी स्थान में चतुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना, ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु व्यापक महान् देवों का देव "महादेव" परमात्मा है, उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख! यह सेतु हमने बाँधकर लंका में आ करके, उस रावण को मार तुझको ले आये। इसके सिवाय वहाँ वाल्मीकि जी ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

(नोटः- श्री रामचन्द्र जी ने देवों के देव 'महादेव' यानि परमात्मा की उपासना लिखा है, यदि श्री राम स्वयं ईश्वर के अवतार होते तो ऐसा कभी नहीं लिखते)

प्रश्न- यह मूर्ति और तीर्थ सनातन से चले आते हैं, झूठे क्यों कर हो सकते हैं?

उत्तर- तुम सनातन किसको कहते हो? जो सदा से चला आता है। यदि यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषि मुनि कृत पुस्तकों में इनका नाम क्यों नहीं? यह मूर्ति पूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर-उधर वाम- मार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त्त में नहीं थी और यह तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये। उनके अनुकूल हम लोगों ने भी बना लिए। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहे, तो वे पण्डों की पुरानी बही, तांबे के पात्र आदि देखें तो निश्चय हो जायेगा कि ये सब तीर्थ पाँच सौ अथवा एक हजार वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्त्र वर्ष से ऊपर का लेख किसी के पास नहीं निकलता। इसी से सिद्ध होता है, ये सब आधुनिक है।

प्रश्न- देखो! बेलपत्ते की "काली गोघटी की कामाक्षा" आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं। क्या यह चमत्कार नहीं है।

उत्तर- कुछ भी नहीं। ये अन्धे लोग भेड़ के तूल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं। कूप-खाई में गिरते हैं, हट नहीं सकते। वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्तिपूजा रूपी गढ़े में फंस कर दुःख पाते हैं।

क्या 'महर्षि दयानन्द का अलभ्य शास्त्रार्थ' वास्तव में महर्षि दयानन्द का शास्त्रार्थ है?

(भावेश मेरजा, भरूच, मो. 09879528247)

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा २०१२ ई. में प्रकाशित दयानन्द ग्रन्थमाला के तृतीय संस्करण के तृतीय भाग में कलकत्ता-शास्त्रार्थ को स्वामी दयानन्द के शास्त्रार्थ के रूप में सम्मिलित कर प्रकाशित किया गया है। यह शास्त्रार्थ प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु ने 'रसाला एक आर्य' पुस्तक को उर्दू से हिन्दी में अनूदित एवं सम्पादित किया है और उन्होंने इसकी भूमिका लिखी है। परोपकारिणी सभा के इस प्रकाश में इस शास्त्रार्थ के शीर्षक को स्पष्ट करते हुए नीचे लिखा गया है- "२२ जनवरी, १८८१ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में पौराणिक विद्वानों द्वारा किये गये प्रश्नों का महर्षि दयानन्द द्वारा अन्य से लिखवाया गया उत्तर"। स्वाभाविक है कि इससे यही प्रकट होता है कि इस शास्त्रार्थ में उपलब्ध उत्तर मूलतः स्वामी दयानन्द द्वारा लिखवाए गए हैं परन्तु ऐसा अनुमान करना उचित नही है, क्योंकि प्रमाणों से इसकी सिद्धि नहीं होती है।

पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक की धारणा अथवा अनुमान

स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों के विरोध में कलकत्ता में पौराणिक पण्डितों द्वारा आयोजित आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा के प्रश्नों के उत्तर के सम्बन्ध में सर्वप्रथम युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था- "इन उत्तरों का प्रत्युत्तर आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से दिया गया। प्रत्युत्तर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये उत्तर किस विद्वान् ने दिये हमें ज्ञात न हो सका।" (ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, द्वितीय भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ४६३, पाद टिप्पणी) उन्होंने आगे इसी विषय पर लिखा था- "उक्त शीर्षक से पं. लेखराम कृत जी० च० (जीवनचरित्र) हिन्दी सं. पृष्ठ ६७१-६६६ तक जो अंश छपा है, उसका ऋ.दं. के पत्र और विज्ञापन के साथ सीधा कुछ भी सम्बन्ध न होने पर भी हम इसे यहां (पत्र और विज्ञापन के ग्रन्थ में) छाप रहे हैं। इसका कारण यह है कि कलकत्ता के पण्डितों ने उक्त सभा करके ऋ. दयानन्द के कतिपय सिद्धान्तों पर जो निर्णय लिया था, उसका उत्तर आर्यसमाज कलकत्ता ने दिया था। इसके सम्बन्ध में जी.च. (लेखराम) पृ. ६७२ पर लिखा है- 'समस्त उत्तर और प्रश्न उन प्रत्युत्तरों सहित जो आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जी की ओर से दिये गये थे, पाठकों की भेंट करते हैं।' इससे विदित होता है कि ये उत्तर ऋ. दयानन्द के लिखे हुए हैं। इतना ही नहीं, उक्त प्रश्नों के जो उत्तर दिये गये हैं, वे अत्यन्त प्रौढ़ हैं। जहां तक हम जानते हैं, उस समय कलकत्ता में कोई ऐसा स्वामी जी का अनुयायी विद्वान् नहीं था, जो ऐसे प्रौढ़ उत्तर दे सकें। (वही, पृ. ८६३) युधिष्ठिर मीमांसक ने यह भी लिखा है- "अतः सम्भव है कि ऋ. दयानन्द ने ३१ मार्च (१८८१) के पश्चात् कलकत्ता की सभा में किये गये आक्षेपों के उत्तर लिखकर आर्यसमाज कलकत्ता को भेजे होंगे।" (वही, पृ. ६६३)

(सम्पादकीय टिप्पणी : प्रस्तुत विषय में लेखक का यह लेख बिना किसी पूर्वाग्रह के केवल इस दृष्टि से प्रकाशित किया जा रहा है कि सत्यता सामने आये। यदि हमें इसका कोई प्रमाणपूर्वक उत्तर प्राप्त होगा, तो हम उसे भी प्रकाशित करेंगे, जिससे पाठक सत्यासत्य का निर्णय कर सकें)

युधिष्ठिर मीमांसक ने जो ये अनुमान किए हैं कि इन उत्तरों का प्रत्युत्तर आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से दिया गया और स्वामी जी ने ये उत्तर लिखकर आर्यसमाज

कलकत्ता को भेजे होंगे, निश्चित रूप से प्रमाणशून्य हैं; क्योंकि उस समय अर्थात् १८८१ तक तो कलकत्ता में आर्यसमाज स्थापित ही नहीं हुआ था। राजेन्द्र जिज्ञासु ने भी युधिष्ठिर मीमांसक की इन बातों पर कुछ भी विचार किए बिना झट अपनी टिप्पणी लिख दी- "पहले कलकत्ता से यह उत्तर छपे थे।" (पण्डित लक्ष्मण आर्योपदेशक रचित महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण जीवनचरित्र, भाग-२, पं. ४६६)

आर्यसमाज कलकत्ता के मासिक मुखपत्र **'आर्यसंसार'** के १६८६ के वार्षिक विशेषांक के अन्त में आर्यसमाज कलकत्ता का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। उसमें स्पष्ट लिखा है- "आर्यसमाज कलकत्ता की स्थापना १८८५ में हुई।" (पृ. ४०५, तत्कालीन सम्पादक-प्रो. उमाकान्त उपाध्याय)

लक्ष्मण आर्योपदेशक कृत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का सम्पूर्ण जीवनचरित्र' के हिन्दी अनुवाद के प्रथम भाग के तीसरे परिशिष्ट में इसके अनुवादक तथा सम्पादक राजेन्द्र जिज्ञासु ने 'महर्षि दयानन्द जी के बलिदान के समय विद्यमान आर्यसमाजों की सूची' दी है। इस सूची में भी आर्यसमाज कलकत्ता का कहीं उल्लेख नहीं है। डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार रचित 'आर्यसमाज का इतिहास' के प्रथम भाग के परिशिष्ट-१ में दी गई 'सन् १८८३ तक स्थापित आर्यसमाजों की सूची' में भी कलकत्ता आर्यसमाज का उल्लेख नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वामी जी के देहावसान अर्थात् ३० अक्टूबर १८८३ पर्यन्त कलकत्ता में कोई आर्यसमाज स्थापित नहीं हुआ था। इसलिए १८८१ में आयोजित कलकत्ता की आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा के प्रश्नों के प्रत्युत्तर आर्यसमाज कलकत्ता की ओर से दिए जाने की या छपने की बात पूर्णतया निराधार सिद्ध होती है।

महर्षि दयानन्द का अलभ्य शास्त्रार्थ

राजेन्द्र जिज्ञासु अपनी पुस्तकों में ऐसा लिखते हैं कि जब वे अन्तिम बार युधिष्ठि मीमांसक को बहालगढ़ में मिले थे, तब युधिष्ठिर मीमांसक ने उनसे कहा- "प्रत्युत्तर पढ़कर ऐसा लगता है कि यह उत्तर ला. साईंदास जी द्वारा नहीं हो सकते। ला. साईंदास ने सम्पादन कर दिया। ये उत्तर अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण हैं। ऋषि जी से पूछकर ही उत्तर दिए गए लगते हैं।" (महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ, पृ. १३) इसी प्रसंग में युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा कही गई बात राजेन्द्र जिज्ञासु ने अन्य स्थान पर इस प्रकार प्रस्तुत की है- "आर्यसमाज को बता दो कि 'एक आर्य' में दिये गये उत्तर महर्षि से पूछ कर दिये गये हैं। कोई असाधारण विद्वान् ही ऐसे उत्तर दे सकता है।... मैंने २५ वर्ष पर्यन्त गुरुमुख से विद्या पाई। मैं अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर आर्य जगत् को आप द्वारा यह बताना चाहता हूं कि पण्डितों की बातों का उत्तर महर्षि दयानन्द की कोटि का विद्वान् ही दे सकता है। अतः सब काम छोड़कर 'रसाला एक आर्य' पुस्तक की खोज कीजिए।"

(म. द. स. का सम्पूर्ण जीवनचरित्र, भाग-२, पृ. ४६४-४६५) युधिष्ठिर मीमांसक ने राजेन्द्र जिज्ञासु से उपर्युक्त बातें कीं, इसका इससे भिन्न अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। राजेन्द्र जिज्ञासु को तत्काल यह पुस्तक मिल भी गई। वे लिखते हैं- "उनके (युधिष्ठिर मीमांसक के) शरीर छोड़ने के कुछ ही मास के पश्चात् यह दुर्लभ पुस्तक हमें अनायास ही और धक्के से प्राप्त हो गई।" (वही, पृ० ४६२)

राजेन्द्र जिज्ञासु ने 'रसाला एक आर्य' का हिन्दी अनुवाद कर इसे महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ शीर्षक से तथा टाईटल पर अपने नाम के साथ २००२ में अबोहर से प्रकाशित कर दिया। इस पुस्तक में युधिष्ठिर मीमांसक के द्वारा व्यक्त की गई उपर्युक्त प्रकल्पना एवं बहालगढ़ में उनसे हुई उस भेंट के दौरान हुई बातों को आधार बनाकर यह बताने का प्रयास किया है कि कलकत्ता की 'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा' के प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी द्वारा अन्य से लिखवाए गए हैं। परोपकारिणी सभा द्वारा दयानन्द ग्रन्थमाला के तृतीय भाग में प्रकाशित कलकत्ता शास्त्रार्थ की सामग्री भी वही है, जो महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ में है।

राजेन्द्र जिज्ञासु का मत है कि- "अब पुस्तक ('रसाला एक आर्य') हमने एक से अधिक बार पढ़ी है। हमें भी यही लगता है कि किसी प्रकार ऋषि जी से सम्पर्क करके कोलकाता की सभा की व्यवस्था के प्रत्युत्तर दिये गये। इस दृष्टि से यह शास्त्रार्थ ऋषि दयानन्द व पण्डितों के मध्य हुआ।" महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ, पृ. १३) परन्तु यह राजेन्द्र जिज्ञासु का व्यक्तिगत अनुमान मात्र है, क्योंकि पुस्तक में ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि जिससे यह प्रकट होता हो कि ये प्रत्युत्तर स्वामी जी से सम्पर्क करके दिए गए हैं।

राजेन्द्र जिज्ञासु ने महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ में लिखा है कि उनको मुरादाबाद आर्यसमाज से 'रसाला एक आर्य' नाम की उर्दू पुस्तक प्राप्त हुई थी, जिसमे कलकत्ता की 'आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा' के प्रश्न एवं आर्यसमाज की ओर से दिए गए उत्तर का विवरण प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इस 'रसाला एक आर्य' उर्दू पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है- "पुस्तक में प्रकाशक का तो क्या लेखक का भी नाम कहीं नहीं दे रखा। हमारे पास पूरी पुस्तक है, तथापि सम्भव है कि टाईटल पृष्ठ १ व २ (जो पुस्तक के साथ नहीं और होना चाहिए था) पर कहीं मुद्रणालय व प्रकाशक का नाम व पता होता। इतना तो निश्चित है कि पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं छपा था। यदि छपा होता तो पुराने लेखक बहुत जोर देकर ऐसा कदापि न लिखते कि इसके लेखक ला. साईंदास जी थे।" (म.द. का एक अलभ्य शास्त्रार्थ, पृ. १२-१३) साईंदास उस पुस्तक के लेखक थे, ऐसा बहुत जोर देकर किसने लिखा है, यह राजेन्द्र जिज्ञासु ने नहीं बताया है। उन्होंने इस उर्दू पुस्तक का प्रकाशन वर्ष भी कहीं नहीं लिखा है।

राजेन्द्र जिज्ञासु ने महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि लाला साईंदास इस पुस्तक के लेखक नहीं हो सकते, क्योंकि उनमें ऐसी योग्यता नहीं थी, साईंदास अच्छे अनुवादक एवं प्रबन्ध पटु तो थे, परन्तु वे पण्डित नहीं थे, इत्यादि। (म.द.स. का सम्पूर्ण जीवनचरित्र, भाग-२, पृ. ४६४-४६५) उन्होंने लिखा है- "लाला साईंदास जी जैसा एक प्रबन्ध पटु व्यक्ति इसका लेखक कैसे हो सकता है?... मौलिक और सैद्धान्तिक पुस्तक लिखना उनके बस की बात नहीं थी।" राजेन्द्र जिज्ञासु ने अपनी इस धारणा या अनुमान का आधार एक मात्र युधिष्ठिर मीमांसक की एतद् विषयक धारणा या अनुमान को बनाया है; अन्य कोई ठोस, निर्णायक या यथोचित प्रमाण अपनी धारणा के पक्ष में वे उपस्थित नहीं कर पाए हैं

राजेन्द्र जिज्ञासु का परस्पर विरोधी मत

फिर भी अपनी पुस्तकों में कुछ स्थानों पर राजेन्द्र जिज्ञासु को भी 'रसाला एक आर्य' के लेखक या सम्पादक के रूप में लाला साईंदास के नाम का उल्लेख करना पड़ा है। जैसे कि-

१. "हमने अपने लेखों में लिखा था कि यह प्रत्युत्तर उर्दू में 'रसाला एक आर्य' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक थे लाहौर आर्यसमाज के नेता श्री ला. साईंदास जी।" (म. द. का एक अलभ्य शास्त्रार्थ, पृ. ११)

२. "इस पुस्तक में इस अध्याय की समाप्ति पर पाद-टिप्पणी में 'रसाला एक आर्य' के लेखका लाला साईंदास जी को बताया गया है।" (वहीं, पृ. १६)

३. "पुस्तक में कहीं भी लेखक ने अपना नाम नहीं दिया। उर्दू के इस सीन अक्षर (स) से लेखक का नाम साईंदास अभिप्रेत है।" (पृ. ७६, पाद-टिप्पणी; तथा म. द.स. का सम्पूर्ण जीवनचरित्र, भाग-२, पृ. ४६६, पाद-टिप्पणी)

४. "एक अलभ्य शास्त्रार्थ में एक स्थान पर उर्दू में दो अक्षर सीन तथा दाल (स एवं द) मिलते हैं। इनसे साईंदास अभिप्रेत है।" (म.द.स. का सम्पूण्र जीवनचरित्र, भाग-२, पृ. ४६५)

५. "यह प्रत्युत्तर उर्दू में 'रसाला एक आर्य' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इसके मुअल्लफ़ (सम्पादक) थे लाहौर आर्यसमाज के नेता श्री लाला साईंदास जी।" (म.द.स. का सम्पूर्ण जीवनचरित्र, भाग-२, पृ. ४६१)

६. "आज तक ऋषि जीवन पर लिखने वालों में

से तीन जीवनी लेखकों- लाला लाजपतराय जी, मेहता राधाकिशन जी तथा श्रीमान् भवानीलाल जी भारतीय ने अपनी-अपनी पुस्तक में 'रसाला एक आर्य' का लेखक लाहौर समाज के लाला साईंदास जी को बताया है।" (वही, पृ. ४६४)

७. महर्षि दयानन्द का एक अलभ्य शास्त्रार्थ के पृ. ८५ पर दी गई अपनी पाद-टिप्पणी में राजेन्द्र जिज्ञासु ने स्पष्ट रूप से साईंदास को 'रसाला एक आर्य' का लेखक लिखा है, परन्तु इसके पूर्ववर्ती पृष्ठ पर दी गई अपनी पाद-टिप्पणी में स्वामी जी को इसका लेखक सूचित करते हुए लिखते हैं- "धन्य थे ऋषिवर दयानन्द जी महाराज, जिन्होंने आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा के आयोजकों व सभा में भाग लेने वालों के विरुद्ध निन्दापरक एक भी शब्द नहीं कहा।" (पृ. ८४) क्या राजेन्द्र जिज्ञासु यह भी बता सकते हैं कि 'रसाला एक आर्य' में कितना अंश, कितनी पंक्तियां स्वामी जी के द्वारा लिखवाई गई हैं और कितना अंश, कितनी पंक्तियां साईंदास या अन्य किसी के द्वारा लिखी गई हैं?

उपरोक्त बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि राजेन्द्र जिज्ञासु स्वयं ही इस विषय में ढिलमिल तथा दुविधग्रस्त हैं और फलतः अपने इष्ट मत को सिद्ध करने में विफल रहे हैं

कलकत्ता की सभा पर स्वामी दयानन्द की प्रतिक्रिया

स्वामी कृपाराम ने स्वामी दयानन्द को आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा के इन प्रश्नों की सूचना देते हुए उनके उत्तर देने की प्रार्थना की थी, परन्तु स्वामी जी ने कृपाराम को पत्र से सूचित कर दिया- "कलकत्ते की सभा आदि के साथ हमको लिखने छपवाने का अवकाश नहीं, वेदभाष्य का काम बहुत है। तुमको अवकाश हो लिखो छपवाओ।" (ऋ.द.स. के पत्र और विज्ञापन, द्वितीय भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ४६३) स्वामी जी ने कृपाराम को यह पत्र ३१ मार्च १८८१ को जयपुर से लिखा था। स्वामी का शेष जीवन तो मसूदा, रायपुर, बनेड़ा, चित्तौड़गढ़, इन्दौर, मुम्बई, उदयपुर, शाहपुरा, जोधपुर, अजमेर आदि में ही व्यतीत हो गया। अतः स्वामी जी ने ये उत्तर अन्य से लिखवाया था- इस प्रकार की बात करने वालों को यह भी तो सप्रमाण बताना पड़ेगा कि स्वामी जी से किसने, कहां पर और कब सम्पर्क कर उनसे ये उत्तर, और वे भी उर्दू में लिखवाए। ऐसा एक भी प्रमाण न तो युधिष्ठिर मीमांसक ने दिया है और न ही राजेन्द्र जिज्ञासु ने।

स्वामी जी के उपर्युक्त पत्र से तो सहज अनुमान यही लगाया जा सकता है वे इन प्रश्नों के प्रत्युत्तर लिखने-छपवाने में समय लगाना ठीक नहीं समझते थे और इसलिए उसमें प्रवृत्त नहीं हुए होंगे। अपने निर्णय पर वे प्रायः दृढ़ रहने वाले व्यक्ति थे। राजेन्द्र जिज्ञासु ने लिखा है- "विद्वान् पण्डित सर्वसम्मत व्यवस्था देकर बड़े गद्गद् हुए होंगे। उन्होंने समझ लिया कि वे जीत गये हैं और दयानन्द पराजित हो गया है, परन्तु ऋषि दयानन्द पर तो इस घटना का किंचित् मात्र भी प्रभाव न पड़ा। उन तक भी इस सभा के सब समाचार पहुंचे या पहुंचाये गये, परन्तु वे इससे घबराये, डगमगाये नहीं। वे सब-कुछ सुनकर भी यथापूर्व अकम्प रहे। वेदवेत्ता ऋषि अथर्व रहा- अडोल रहा।" (दयानन्द ग्रन्थमाला, तृतीय संस्करण, तृतीय भाग में समाविष्ट कलकत्ता-शास्त्रार्थ की भूमिका, पृ. ६३१) इससे भी उसी अनुमान को बल मिलता है कि स्वामी जी ने कृपाराम को लिखे पत्र में जो लिखा था तदनुसार कलकत्ता की इस सभा के उत्तर में स्वयं कुछ भी नहीं लिखा-लिखवाया होगा। अतः सम्भव है कि स्वामी जी के पत्र के निर्देशानुसार साईंदास ने उन प्रश्नों के उत्तर लिखा-लिखवाया होगा। अतः सम्भव है कि स्वामी जी के पत्र के निर्देशानुसार साईंदास ने उन प्रश्नों के उत्तर तैयार कर 'रसाला एक आर्य' प्रकाशित किया हो। स्वामी दयानन्द के जीवनचरित्रकार डॉ. जे.टी.एफ. जोर्डन्स ने भी कुछ ऐसा ही मत प्रकट करते हुए लिखा है- "It is not likely that the Council carried much weight outside Calcutta. The Swami was well aware of these events... So he left it to his Aryas to give a detailed answer." (Dayananda Sarasvati - His Life and Ideas, p. 219) अर्थात् "सभा की कार्यवाही

का प्रभाव कलकत्ता के बाहर कुछ खास उत्पन्न होने वाला नहीं था। स्वामी जी इन घटनाओं के बारे में अच्छी तरह जानते थे... इसलिए विस्तृत उत्तर देने का काम उन्होंने अपने आर्यों पर छोड़ दिया था।"

आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा के प्रश्नों के उत्तर हिन्दी के स्थान पर उर्दू में क्यों?

आर्य सन्मार्ग सन्दर्शिनी सभा में एकत्रित पण्डितों में अधिकतर तो बंगाल, कानपुर, वृन्दावन, नवद्वीप आदि के ही थे। जिन्होंने इस सभा में मुख्य भूमिका निभाई थी, वे महेशचन्द्र न्यायरत्न, रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (रामसोवा शास्त्री) आदि संस्कृतज्ञ थे। अतः पण्डित लेखराम संगृहीत जीवनचरित्र में लिखा है- "(इस सभा में) संस्कृत और बंगला दोनों भाषाओं में तर्क-वितर्क होता रहा। प्रश्नों के उत्तर सब लिख लिये गये थे और उन पर सब पण्डितों की सही (हस्ताक्षर) हुई थी।" (पृ. ६१३, संस्करण २००७ ई.) इससे इतना तो निश्चित है कि कलकत्ता की इस सभा में उन पण्डितों द्वारा उर्दू का व्यवहार तो नहीं किया गया होगा। उस समय इस सभा का विवरण जिन 'सार-सुधानिधि' तथा 'आर्य-दर्पण' आदि समाचारपत्रों में छपा था, वह भी हिन्दी में ही छपा होगा। 'रसाला एक आर्य' में लिखा है कि सभा की कार्यवाही का विवरण इन्हीं 'सार-सुधानिधि' तथा 'आर्य-दर्पण' पत्रिकाओं में से लिया गया है। (म.द. का एक अलभ्य शास्त्रार्थ, पृ. २२, ३४) परन्तु 'रसाला एक आर्य' तो उर्दू पुस्तक है। स्वामी जी उर्दू नहीं जानते थे। अतः इतना तो निश्चित है कि अगर स्वामी जी को इस सभा के इन प्रश्नों का ज्ञान हुआ होगा, तो वह केवल हिन्दी (या संस्कृत) भाषा के माध्यम से ही हुआ होगा। अगर इन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी द्वारा अन्य से लिखवाए गए हाते, तो भी स्वामी जी ने अपने उत्तर तो हिन्दी भाषा में ही बोलकर लिखवाए होंगे, नहीं कि उर्दू में। उस समय तो स्वामी जी को हिन्दी भाषा पर पूर्ण अधिकार हो गया था और वे हिन्दी के प्रबल पक्षधर थे। भ्रमोच्छेदन, अनुभ्रमोच्छेदन, भ्रान्तिनिवारण, गोकरुणानिधि आदि लघुग्रन्थ उन्होंने आर्यभाषा (हिन्दी) में ही प्रकाशित किए थे। अतः कलकत्ता की सभा के इन प्रश्नों के उत्तर उर्दू में छपे इस बात की अनुमति स्वामी जी ने दी हो, यह सम्भव नहीं है।

स्वामी जी ने कलकत्ता की पण्डितों की इस सभा में उठाए गए प्रश्नों तथा उसकी सम्पूर्ण कार्यवाही का पूरा-पूरा विवरण पढ़ा था या नहीं, यह भी निश्चित करना हमारे लिए कठिन है। अगर उन्होंने पढ़ा होता और प्रत्युत्तर उचित लगता तो वे स्वयं ही लिखकर अपने नाम से हिन्दी में प्रकाशित कर सकते थे। अतः 'रसाला एक आर्य' को स्वामी जी द्वारा अन्य से लिखवाई गई पुस्तक मानने वालों को इस प्रश्न का उत्तर देना होगा कि किसी भी स्थिति में स्वामी जी अपने इन उत्तरों का प्रकाशन हिन्दी को छोड़कर उर्दू में करने के पक्ष में कैसे हो सकते थे? वैसे स्वामी जी ने अपने पत्रादि में कहीं भी 'रसाला एक आर्य' को अपनी कृत्ति नहीं बताया है और न ही आज पर्यन्त राजेन्द्र जिज्ञासु तथा परोपकारिणी सभा को छोड़कर किसी ने स्वामी जी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थों की सूची में 'रसाला एक आर्य' का समावेश किया है।

अगर कोई ऐसी कल्पना करें कि स्वामी जी ने प्रथम हिन्दी में उत्तर लिखवाए हों, जिन्हें बाद में किसी ने उर्दू में अनूदित कर प्रकाशित किए होंगे, तो यह एक क्लिष्ट तथा प्रमाण-शून्य कल्पना ही मानी जाएगी क्योंकि अगर स्वामी जी ने उत्तर लिखवाए होते तो उस समय स्वामी ने यह भी तो पूछा होगा कि इन उत्तरों को आप लोग किस भाषा में प्रकाशित करने वाले हैं। स्वामी ने तो हिन्दी में ही प्रकाशित करने का आदेश दिया होगा। पुनः 'रसाला एक आर्य' उर्दू में क्यों प्रकाशित हुई? 'रसाला एक आर्य' को स्वामी जी द्वारा अन्य से लिखवाई गई पुस्तक मानने वालों को इसका समाधान भी करना होगा।

(क्रमशः)

पृष्ठ ५ का शेष

भगवान हैं। श्रीकृष्णके भी 360 रानियां थीं उनको भी आज भगवान मान कर पूजते हैं। यदि मेरा अनुमान सही है तो अब तक के सभी विवादास्पद व बदनाम कुसन्तों को अपने काले कारनामों में राम रहीम ने सबको पीछे छोड़ा नहीं अपितु बहुत पीछे धकेल दिया है। चाणक्य का कथन **"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"**। क्या राधे मां का कल्पित धर्म मनुष्य को मनुष्य बनाएगा? क्या नारायण सांई और आशाराम का कल्पित धर्म को पाप से बचाएगा? क्या राम पाल दास का कल्पित धर्म मानव को मानवता के पथ पर चलाएगा? क्या ओम स्वामी का कल्पित धर्म समाज को सामाजिकता का पाठ पढ़ाएगा? क्या इच्छाधारी भीमचन्द का कल्पित धर्म राष्ट्र को शान्ति का रास्ता दिखाएगा? क्या निर्मल बाबा का कल्पित धर्म समाज को सत्य का मार्ग दिखाएगा? अथवा राम रहीम का कल्पित ध र्म देश को अधर्म से बचाएगा? सुधी पाठक स्वयं निष्पक्षता से चिन्तन करें। परन्तु मेरा उत्तर है नहीं क्योंकि जिस धर्म की कल्पना हमारे ऋषियों, मुनियों, योगियों, साधकों, उपासकों ने शास्त्रों में, उपनिषदों में, दर्शनों में और गता में अथवा स्मृतियों में की है, वही धर्म शाश्वत है, सनातन है। उपरोक्त तथाकथित सन्तों का कल्पित धर्म ऋषियों के द्वारा परिभाषित धर्म से दूर-दूर तक मेल नहीं खाता। क्योंकि इनमें कोई तान्त्रिक है, कोई फिल्मी अभिनेता है, कोई तीन से दस हजार करोड़ का कारोबारी है, कोई स्वर्ग का ठेकेदार है और कोई खुद भगवान है। जब तक इस प्रकार के नकाबपोश धर्म को परिभाषित कर समाज पर थोपेंगे, तो अशान्ति और अन्याय होगा। ऋषियों द्वारा प्रतिपादित व परिभाषित वेदोक्त धर्म ही समाज को अशान्ति से, अधर्म से, अज्ञानता से, दानवता से और पापाचार से बचाएगा।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

❑❑

पृष्ठ ८ का शेष

अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यते।। २/२।।- खाया जाता है और खाता है प्राणियों को, इसलिए 'अन्न' कहा जाता है। भर्तृहरि ने भी कुछ ऐसा ही कहा था- भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः- भोग नहीं भोगे जाते, वे ही हमको खा जाते हैं। आशय यह है कि जितना हम भोगों में विलासिता से आचरण करेंगे, उतना ही अपने जीवन को नष्ट करेंगे। वास्तव में, तो भोगों से दूर जाने के लिए यह जीवन मिला है।

दूसरी ओर उपनिषद् कहता है-

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्।। ३/७।।

अन्न ही जीवन का आधार है, इसलिए अन्न की निन्दा कभी न करना। यह तुम्हारा व्रत हो। आजकल हम पाते हैं कि होटलों आदि में प्रचुर मात्रा में अन्न फेंका जाता है। यह पाप है। यह पाप हम सभी के सर लगता है। यह भी एक कारण है जिससे कि प्राकृतिक आपदाएं दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही हैं। अभी भी भारत में पुरानी रीति के फिर भी कुछ लोग मिल जाते हैं, जो अपनी थाली में एक कण भी नहीं छोड़ते। यही प्रथा सही है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।।२/१।।

ब्रह्म सत्यस्वरूप (सत्ता वाला), ज्ञानस्वरूप (सर्वज्ञ) और अनन्त (काल और दिशा के परे) है।

तैत्तिरीय में अधिलोक आदि की सन्धियों की व्याख्या, **भूः, भुवः, स्वः व महः** व्याहृतियों की विषद व्याख्या, अन्नमय आदि कोशों का विवरण, सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन और ब्रह्म की व्याख्या है। आनन्द की भी मीमांसा प्रस्तुत की गई है। ये सभी पठनीय हैं।

जहां सभी उपनिषदों में ब्रह्मप्राप्ति का विषय-साम्य है, और कुछ विषय बार-बार पाए जाते हैं, तथापि प्रत्येक उपनिषद् कुछ नई बात भी कहता है। तैत्तिरीयोपनिषद् ऐसे ज्ञान की खान है। उसको पढ़ने और मनन करने से, पाठक को बहुत सन्तोष मिलेगा- उसको नया ज्ञान मिलेगा और उसके अनेकों संशय दूर होंगे। तथापि यह उपनिषद् भी कठिन है और अच्छे भाष्य या गुरु की अपेक्षा रखता है।

❑❑

रामराज्य की सुखद कल्पना झूठे सपनों की कहानी है।।

(पं. विवेकानन्द शास्त्री पुरोहित, आर्य समाज रमाला, बागपत)

सत्तर साल से प्रजातन्त्र प्रणाली, भारत देश में चल रही।
नेताओं की हेराफेरी, भ्रष्टाचार में पल रही।
हिन्दू राष्ट्र बने कभी ना, यह दाल नेताओं में गल रही।
समस्यायें राष्ट्र की खड़ी सामने, नहीं कभी वह हल रही।
राम राज्य की सुखद कल्पना झूठे सपनों की कहानी है।
सत्ता चाहने वालों के झूठे सब्जबागों की कहानी है।। १।।

मुस्लिम लीग कुटिल चाल को, कांग्रेस सहजता से सह गयी।
इसीलिये तो मुस्लिम जनता भारत देश में रह गयी।
जाते-जाते अंग्रेजी हुकूमत निज मतलब की बात कह गयी।
जड़ गुलामी की उखाड़ सके ना वह गहराई की सतह गयी।
राजनैतिक टोलियाँ केवल, वोटों की प्रेम-दीवानी है।
सत्ता चाहने वालों के झूठे सब्जबागों की कहानी है।। २।।

लूट-पाट दुराचार हत्यायें चहुंओर राष्ट्र में हो रही।
नहीं सुरक्षा की चिन्ता सरकारों को, वह अपनी फिकर में खो रही।
बेराजगारी-महंगाई से गरीब जनता अपनी हालत पर रो रही।
नेताओं की नेतागिरी बाज निज स्वार्थ की बो रही।
इसीलिये राजनीति में नेताओं की चलती मनमानी है।
सत्ता चाहने वालों के झूठे सब्जबागों की कहानी है।। ३।।

अपराधी वृत्ति के नेता कानून, नहीं बनने देते सख्त।
शीघ्र चढ़ नहीं पा रहे अपराधी फांसी के तख्त।
राष्ट्रभक्त ईमानदार प्रधानमंत्री का नीला पड़ गया रक्त।
मार डाला भ्रष्टाचारी नेताओं ने उन्हें समझौते का वक्त।
ऐसी घिनौनी राजनीति से खुशहाली नहीं कभी आनी है।
सत्ता चाहने वालों के झूठे सब्जबागों की कहानी है।। ४।।

दूर-दृष्टि न रही प्रजा में, न राष्ट्र हित में है बुद्धि।
ईश्वरोपासना कभी न करते, कैसे मन की होगी शुद्धि?
संसद भवन में उसे, भेजते, जो होता चरित्र का रद्दी।
कर लेता है वो पांच साल में धन-दौलत में वृद्धि।
कहे विवेकानन्द आज राजनीति में भर गई शैतानी है।
सत्ता चाहने वालों के झूठे सब्जबागों की कहानी है।। ५।।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१०/२०१७
भार- ४० ग्राम

अक्टूबर 2017

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका
श्री सेवा में.................
ग्राम.................
डा0 ....
जिला.................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।